माण्डूक्योपनिषद्

अनन्तश्रीविभूषित गुरुवर श्री स्वामी जी की स्मृति में

चतुर्थ पुष्प

बनखण्डिश्रीपीताम्बरापीठस्थस्वामिकृता

पंचोपनिषत्

(प्रकाश-भाष्य)

पर

आधारित टीका

(संस्कृत-हिन्दी)

टीकाकार
श्री कृष्णानन्द जी बुधौलिया, वेदान्त शास्त्री
दतिया (म०प्र०)

प्रकाशकः-
श्री पीताम्बरा पीठ
दतिया (म०प्र०)

माण्डूक्योपनिषद्

अनन्तश्रीविभूषित गुरुवर श्री स्वामी जी

की स्मृति में



चतुर्थ पुष्प

वनखण्डिश्रीपीताम्बरापीठस्थस्वामिकृता



पंचोपनिषत्

(प्रकाश-भाष्य)

पर

आधारित टीका

(संस्कृत–हिन्दी)



टीकाकार

श्री कृष्णानन्द जी बुधौलिया, वेदान्त शास्त्री,

दतिया (म०प्र०)

माण्डयूक्योपनिषद्

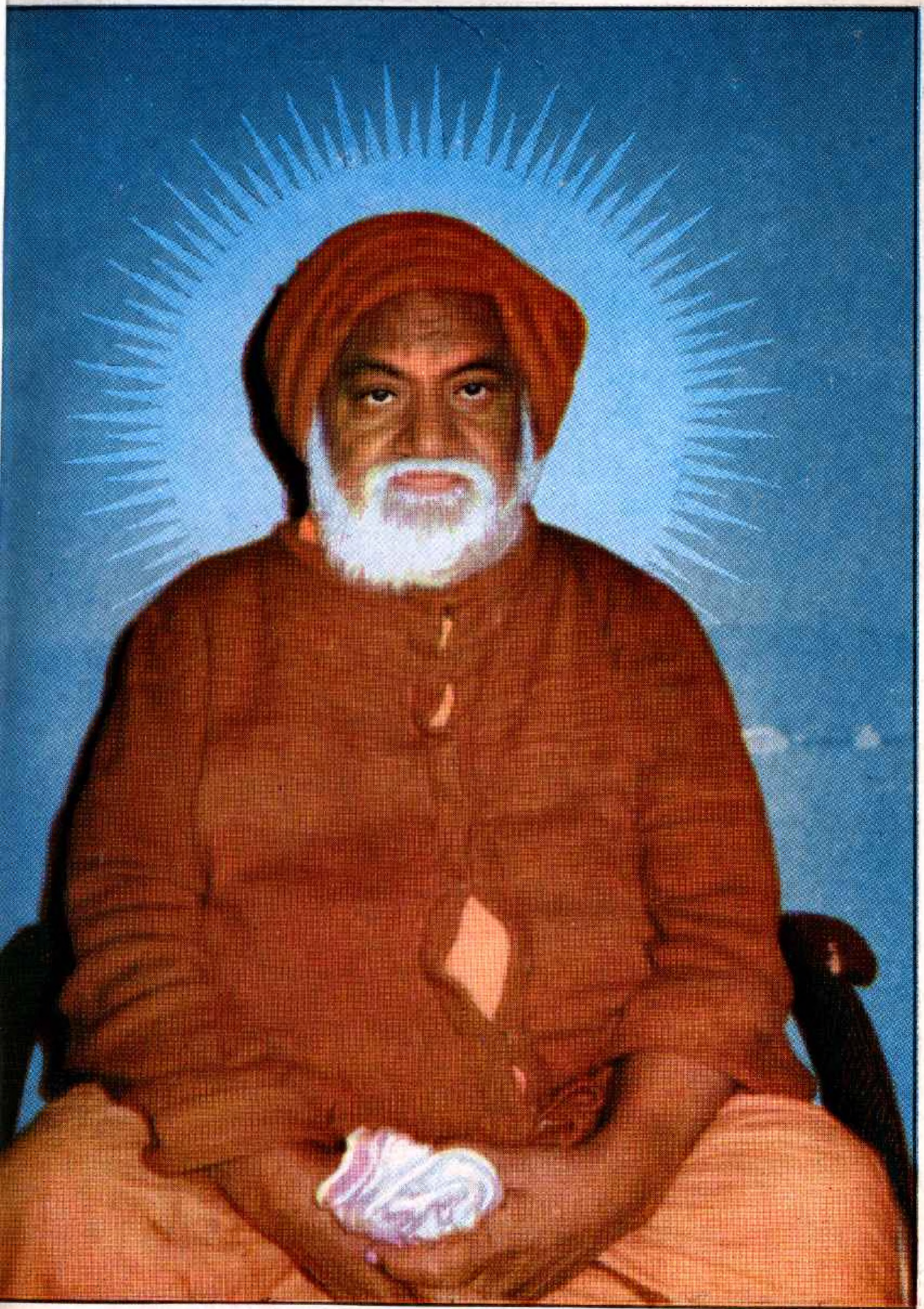
प्रकाशक : श्री पीताम्बरा पीठ दतिया (म०प्र०)

टीकाकार : श्री कृष्णानन्द जी बुधौलिया, वेदान्त शास्त्री
दतिया (म०प्र०)

प्रथम संस्करण : 2037 (1980)
पुनर्मुद्रण सम्बत् : 2066 (2009)

मुद्रक : शिवशक्ति प्रेस प्रा० लि०
नयागांव, ग्वालियर रोड, झांसी (उ०प्र०)
फोन–0510–2441092

मूल्य : २५ रूपये



श्री पीताम्बरा पीठाधीश्वराः परम पूज्य श्री १००८
श्री स्वामी जी महाराज वनखण्डेश्वर, दतिया

उपलब्ध नहीं है। अतः अद्वैतवादी कहते हैं कि श्रुति का निश्चयात्मक तात्पर्य अद्वैत–सिद्वान्त के पक्ष में है। इसी प्रकार द्वैताद्वैत वाद का भी निरास किया जाता है जिसका विस्तृत विवेचन लेखक द्वारा मुण्डक उपनिषत् के प्रकाश भाष्य में किया गया है।

सभी अद्वैत वादी विद्वानों ने, अद्वैत मत के प्रतिपादन के हेतु, माण्डूक्य उपनिषत् का आश्रय लिया है, तथा अपने अपने मत के अनुसार इसकी अनेक टीकाओं की रचना की है। परन्तु इस उपनिषत् का वास्तविक अभिप्राय शैव सिद्धान्त के अनुरूप प्रतीत होता है, कारण यह है कि "शान्तं शिवमद्वैतम्", "शिवोऽद्वैत एव", आदि वाक्य उपनिषत् में उपलब्ध हैं अतएव इस के तात्पर्य का पर्यवसान शिवाद्वैत में ही प्रतिपादित किया जा सकता है। इस निष्कर्ष की सिद्धि इस तथ्य से भी होती है कि इस ग्रन्थ में शैव एवं शाक्त मतों में प्रसिद्धतया प्रतिपादित तत्त्वों का निरूपण प्रत्यक्षतः देखा जा सकता है। इस कारण अन्य मतों के समर्थन के लिये यहां अवकाश नहीं है अतएव शिवाद्वैत सिद्धान्त के अनुरूप स्पष्टीकरण के हेतु प्रस्तुत भाष्य में प्रयास किया जा रहा है।

शक्ति एवं शक्तिमान में अभेद है। इस के आधार पर यहां शाक्तसम्मत विषयों का भी निरूपण किया गया है। शक्ति एवं शक्तिमान दोनों एक हैं। शक्ति सूत्र में कहा भी है। "चिति स्वतन्त्रा विश्वसिद्धिहेतुः", एवं "चैतन्यश्चात्मा" (शिवसूत्र)। अर्थात्

विश्व की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार करने में चिति स्वतन्त्र है। तथा शिवसूत्रों में चैतन्य को ही आत्मा कहा गया है। इस कारण शिव–शक्ति दोनों के ऐक्य का ज्ञान होता है। इस के अतिरिक्त अन्य उदाहरण भी है – यथा "शक्तो यथा शम्भुर्भुक्तौमुक्तौ च पशुगणस्यास्य, तामेनां चिद्रूपामाद्यां सर्वात्मनास्मिनतः" अर्थात् जिसके द्वारा शम्भु जीव को भोग एवं मोक्ष प्रदान करते हैं उस चिद्रूपा आद्याा शक्ति की सर्व भावेन स्तुति की गई है। शाक्त एवं शैव उभय मतों में अद्वैत के स्वरूप का प्रतिपादन एक समान ही उपलब्ध होता है अर्थात् भिन्नता नहीं है। भगवत् पाद के अनुसार निरूपित अद्वैत मत में केवल माया पर्यनत तत्त्वों का प्रतिपादन है, माया की निवृत्ति के अनन्तर अद्वैत मात्र अवशिष्ट रह जाता है। इनके मत में विद्याातत्व, ईश्वर तत्त्व, सदाशिव तत्त्व, शिव–शक्ति तत्त्व को अंगीकार नहीं किया गया है एवं 'तत्त्वमसि' वाक्यजन्य ज्ञान को भी अविद्या–कोटि में प्रतिपादित किया है। इस के विपरीत शैव एवं शाक्त मतों में शुद्ध विद्या तत्त्व के अद्वैत का बोधक निर्धारित कर सत्य कोटि में स्वीकार किया है। सत्ख्यातिवाद के अनुसार जगत् को सत्य किन्तु केवल माया जन्य भेद को मिथ्या निरूपित किया गया है। परन्तु श्री भगवत्पाद के मत के अनुसार भेद के साथ जगत् का मिथ्यात्व भी सिद्ध किया है। यदि इस प्रकार स्वीकार कर लिया जावे तब गुरु, शास्त्र, शिष्य आदि का निरूपण भी व्यर्थ सिद्ध हो जाता है। श्रीभगवत्पाद के मत में ईश्वर तत्त्व को माया तत्त्व की सत्यता सिद्ध होने पर ही ईश्वर

तत्त्व का सत्यत्व सिद्ध होता है अन्यथा माया तत्त्व के समान ईश्वर का ऐश्वर्य भी कल्पित है। परन्तु शैव मत में ईश्वर तत्त्व को नित्य ऐश्वर्य से युक्त निरूपित किया है अतएव यह माया तत्त्व के केवल भिन्न ही नहीं अपितु माया का स्वामी भी है। शाङ्कर एवं शैव मतों में यही भिन्नता है।

सच्चिदानन्द रूप पर शिव के इच्छा से आनन्द अंश से शिव–शक्ति तत्त्व, चिंदश से ईश्वर, सदाशिव, शुद्धविद्या तत्त्व, एवं सत् अंश से माया से पृथ्वी पर्यन्त इकतीस जड़ तत्त्वों की उत्पत्ति होती है। पूर्वोक्त समस्त तत्त्वों का पर तत्त्व में ऐक्य होता है जो सच्चिदानन्द रूप से अभिमत अद्वैत नामक तत्त्व कहा गया हैं। "ईश्वर तत्त्व एवं सदाशिव तत्त्व एक ही हैं, जैसा कि कहा हैं, "ईश्वरता कर्तृत्व स्वतन्त्रता चित्स्वरूपता चेति"। विद्वानों ने इन तत्त्वों को अहंता का पर्यायवाची कहा है। शुद्ध सत्त्व की प्रधानता से ईश्वर तत्त्व को ही पराहंता निरूपित किया जाता है, श्रुति कहती है "एकोऽहं बहुस्याम" अर्थात् एक ही अनेक रूपों में व्यक्त होता है। जब सत्त्व की विरलता अर्थात् अप्रधानता हो जानी है तब ईश्वर तत्त्व ही सदाशिव पद का वाच्य होता है अथवा मन्त्रेश्वर नाम से सम्बोधित किया जाता है। शब्द–ब्रह्म तत्त्व से अवच्छित्र ब्रह्म ही सदाशिव तत्त्व है। श्रुति में "प्रभवाप्ययौ हि भूतानां" इत्यादि वाक्यों के द्वारा ही अभय तत्त्वों के ऐक्य को ही ईश्वर निर्दिश्ट किया गया है। "अयमात्मा ब्रह्मेति" अर्थात् 'यह आत्मा ब्रह्म है' वाक्य के द्वारा विद्यातत्व को समस्त तत्त्वों के अंतर्गत

अभेद का बोधक निरूपित किया है, इसके समर्थन में श्रुति के "सर्व खल्विदं ब्रह्म", शिवोऽहम्", "अहं ब्रह्मास्मि, "सोऽहम्" इत्यादि वाक्य भी उपलब्ध हैं। अर्थात् श्रुति का यह निश्चित मत है कि यह समस्त जगत् ब्रह्म का ही स्वरूप है, अंश शिव है, अहं ब्रह्म ही है, जीव एवं ब्रह्म में अभेद है।

पञ्च कञ्चुकों में आविष्ट जीव पदार्थ भी अहं एवं मम (अर्थात् मैं और मेरा) अभिमान से युक्त है। जीव जब अद्वैत रूपा विद्या के द्वारा शिवतत्त्व से साक्षात्कार करता है तब शिवत्व प्राप्त करता है अर्थात् स्वयं शिव रूप हो जाता है।

शिव समष्टि एवं व्यष्टि भेद से दो प्रकार है। हिरण्यगर्भ अर्थात विराट समष्टि रूप है। प्रज्ञ, तैजस, एवं विश्व व्यष्टि रूप हैं। शिव एवं जीव में अङ्गाङ्गि भाव को दर्शाने के लिए समष्टि एवं व्यष्टि रूप से में प्रतिपादन किया हैं। उपनिषत् में जो सप्ताङ्ग पद का प्रयोग किया गया है उससे माया आदि सात शुद्ध एवं अशुद्ध तत्त्वों का निर्देशन होता है। "एकोनविंशति मुखः" पद के द्वारा प्रकृति से पृथ्वी पर्यन्त उन्नीस तत्त्वों का उपदेश किया गया है।

इस प्रकार पांच समष्टि व्यष्टि रूप तत्त्व, सप्ताङ्ग एवं एकोनविंशतिमुख अर्थात् उन्नीस का एकत्र योग इकतीस होता है। पांच शब्द आदि तन्मात्राओं एवं पांच महाभूतों का एक साथ स्थूलभुग् प्रतिपादित किया गया है। इस प्रकार इकतीस एवं पांच का योग छत्तीस तत्त्वों के नाम से समाविष्ट किया गया है। ओंकार का अवलम्बन कर ब्रह्म का साक्षात्कार करना ही सम्प्रदाय

है। ओंकार जन्य मन्त्र एवं बीजों का विषय विभूतिमात्र है। प्रणव से ही भुक्ति एवं मुक्ति की प्राप्ति होती है अतः अभय प्रणव के ही आश्रित हैं।

जगत के आविर्भाव एवं तिरोभाव का कारण शक्ति है। कारण रूप शक्ति के अन्तर्गत विद्यमान जगत का ही आविर्भाव होता है तथा पुनः शक्ति के अन्तः में ही तिरोधान होता जाता है जैसा कि तन्त्र में कहा गया है "अहमिप्रलयं कुर्वत्रिदमः प्रतियोगिनः"। अर्थात् इदं के द्वारा अभिव्यक्त जगत् रूप प्रतियोगी को अहंमात्मक अनुभूति में विलय करना ही साधक का ध्येय है। अभ्युदय की प्राप्ति के हेतु उपदिष्ट आचरण से जिस फल का आविर्भाव होता है वह भुक्ति है तथा तिरोभाव अर्थात् मोक्ष धर्म के आचरण से निःश्रेयस् की प्राप्ति ही प्रयोजन है। यहां अद्वैत नामक मोक्ष ही रम प्रयोजन है। इस प्रकार उपनिषद् में वर्णित अर्थ की संगति निरूपित की गई है।

श्री पीताम्बरापीठस्थः स्वामी
श्री पीताम्बरापीठ–दतिया

टिप्पणी : शैवागम के अनुसार छत्तीस तत्त्व १–शिव २–शक्ति ३– सदाशिव ४– ईश्वर ५– शुद्ध विद्या ६–माया ७–कला ८– विद्या ९–राग १०–काल ११– नियति १२–पुरुष १३– प्रकृति १४– बुद्धि १५– अहङ्कार १६– मन १७– श्रोत्र १८– त्वक् १९– चक्षु २०– जिह्वा २१– घ्राण २२–वाक् २३– पाणि २४– पाद २५– पायु २६– उपस्थ २७– शब्द २८– स्पर्श २९– रूप ३०– रस ३१– गन्ध ३२– आकाश ३३–वायु ३४–वह्नि ३५– सलिल ३६– भूमि।

माण्डूक्योपनिषद्

ओं भद्रंकर्णेभिः श्रुणुयाम देवा भद्रं पंश्येमाक्षिभिर्यजत्राः
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवा ध्वं, सस्तनूभिर्व्यशेम हि देवहितं यदायुः।।
स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।।
।। ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।

मङ्गला चरण

जाग्रदादिषु भावेषु प्रणवाभ्यास पाटवात्।
सर्वेभ्यश्च परं तत्त्वं शिवं पश्यन्ति योगिनः।।

इयम माण्डूक्योपनिषदथर्ववेदान्तर्गता, अस्या एकस्या एवानुसन्धानेन उपनिषत्परम प्रयोजनस्य सिद्धिर्भवति। उक्तञ्च मुक्तिके —"माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये" इति। मुण्डके परमात्मप्राप्तिहेतुकं "प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा" इत्यादि मन्त्रे यत्तत्त्वमुपदिष्टं तस्यैव वैशद्यप्रदर्शनार्थमस्या आरम्भः, वाच्यवाचक सम्बन्धमभिलक्ष्य निखिलं तत्त्वमुपदिष्टम्। षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपं यच्छिवशक्तिपरिणामभूतं तत्सर्वमस्यामुपनिषदि निर्दिष्टम्। एतद् विज्ञान योगी अद्वैतनिष्टो भवति। शिवतां चोपगच्छति वाच्यवाचकतत्त्वज्ञानादेव तत्त्वरूपावगतिरिति प्रथमं परब्रह्मवाचकमोङ्कार स्वरूपमुपदिशत्राह—ओंमितिः—

माण्डूक्योपनिषद्

का

गुरुवर श्री स्वामी जी कृत प्रकाश भाष्य

का

हिन्दी अनुवाद

मंङ्गला चरण

जाग्रदादिषु भावेषु प्रणवाभ्यास पाटवात्।
सर्वेभ्यश्च परं तत्त्वं शिवं पश्यन्ति योगिनः।।

भाषानुवाद

जाग्रदादि भावों में करके प्रणबमन्त्र का पटु अभ्यास।
सब से परे तत्त्व शिव जिसका योगिजनों को होता भास।।

माण्डूक्योपनिषद् अथर्व वेद के अंतर्गत है। केवल माण्डूक्य के अनुसंधान से ही उपनिषद् विद्या के परम प्रयोजन की सिद्धि हो जाती है। जैसा कि मुक्तिक उपनिषद् में कहा हे, "माण्डूक्यमेकमेवालं मुमुक्षूणां विमुक्तये"। अर्थात् मुमुक्षुओं की मुक्ति के हेतु केवल एक माण्डूक्य उपनिषद् ही पर्याप्त है। परमात्मा की प्राप्ति के हेतु मुण्डक उपनिषद् के अंतर्गत, "प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं, शरवत् तन्मयो भवेत्" मन्त्र में जो तत्त्व उपदिष्ट

है उसके विशद व्याख्यान के हेतु इस उपनिषद् का आरम्भ किया गया है। यहां वाच्य वाचक सम्बन्ध को अभिलक्षित कर निखिल तत्त्व का उपदेश है। शिव–शक्ति का परिणाम भूत जो कुछ षट्–त्रिंशत–तत्त्वात्मक[२] विश्व है उसका सर्वस्व इस उपनिषद् में निर्दिष्ट है। इस सब का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर योगी अद्वैत निष्ठ हो जाता है एवं शिवतत्व में समावेश प्राप्त करता है। वाच्य एवं वाचक तत्त्वों के ज्ञान से ही शिव शक्त्यात्मक स्वरूप की अवगति (ज्ञान) होती है अतएव सर्वप्रथम, परब्रह्म के वाचक ओंकार के स्वरूप का उपदेश करते हुए "ओमिति" मन्त्र का प्रारम्भ किया है:–

मन्त्र

।।१।। "ओमित्येकारक्षरमिदꣳ सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवत् भविष्यदिति सर्वमोंकार एव यच्चान्यत् त्रिकालातीतं तदपि ओंकार एव"।।१।।

प्रकाशभाष्य

ओमिति अवति साधक वृन्दमज्ञानादित्योम् अथवा एतद् भजतः साधकान् स्वीकरोति इत्येवं नामकंमेकं प्रधानमक्षरं न क्षरतीति अनश्वरम् "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" इति स्मृतेः। स्फोटवर्णात्मकः शब्दः प्रणवस्वरूप एवेति शाब्दिकाः। परब्रह्म परमात्मनो वाचकः वाच्यवाचकयोरभेदः अतएव वाच्येन सार्धमभेदं कृत्वा उच्यते – "इदं सर्वमिति" यथा "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" तथा सर्वं

शब्दब्रह्मैवेदभित्यभिप्रायः। तस्य प्रणवस्य उपव्याख्यानं विस्तरेण कथनं कर्तव्यमिति शेषः। भूतं भवद् भविष्य दिति सर्वमोङ्कार एव कालकृत एवं सृष्टिव्यवहारः तमधिकृत्य सर्वात्मताम् ओङ्कारस्याह–भूतमित्यादि–भूतं अतीतं भवत् प्रवर्तमानं भविष्यद् आगामि यत् भविष्यति तत्सर्वमोङ्कार एव।

कार्यस्य कारणादव्यतिरेकात् कालतत्त्वादपि ऊर्ध्वं यन्मस वाचा निर्वक्तुमशक्यं ब्रह्मतत्त्वं तदपि ओङ्कार एव अतएव यच्चेत्युक्त यच्चकार्यमतीतं, अन्यत् त्रिकालातीतं तदपि ओङ्कार वाच्यमेव।।१।।

मन्त्रानुवाद

मन्त्र

इदं नाम से सम्बोधित यह समस्त विश्व एक अक्षर ओं का ही स्वरूप है। उसका यह उपव्याख्यान है। भूत, भवत् (प्रर्वतमान) एवं भविष्यत् सब ओंकार ही है। इससे अन्य जो त्रिकालातीत है वह भी ओंकार है।

ओं जो साधक वृन्द की अज्ञान से रक्षा करता वह ओं है। अथवा ओं परमात्मा का नाम है जो इस मन्त्र के उपासकों को स्वीकार करता है (अर्थात् स्वयं में लीन कर लेता है।) ओं नामक यह प्रधान अक्षर है। जिसका क्षरण नहीं होता अर्थात् जो अनश्वर है उसको अक्षर कहा जाता है। स्मृति में भी ओं को एकाक्षर ब्रह्म कहा जाता है "ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म" ।इति।

शाब्दिक अर्थात् वैयाकरण स्फोटवाद के प्रतिपादक हैं।

इसके मत के अनुसार वर्णों के रूप में शब्द का ही स्फोट होता है अतएव स्फोट से उद्भूत वर्णात्मक शब्द प्रणवस्वरूप है। इस कारण शब्द परब्रह्म परमात्मा का वाचक है। सिद्धान्ततः वाच्य एवं वाचक का अभेद प्रतिपादित है। जिस प्रकार श्रुति में "सर्व खल्विदं ब्रह्म" निर्वचन के द्वारा इदं नामक समस्त विश्व को ब्रह्म निरूपित किया गया है इसी प्रकार यहां ब्रह्म के वाचक ओं का वाच्य इदं के साथ अभेद सम्पादित कर समस्त इदमात्मक विश्व को शब्द ब्रह्म का स्वरूप निरूपित किया गया है। अर्थात् मन्त्र का अभिप्राय है कि यह समस्त विश्व शब्द ब्रह्म है। उस प्रणव का उपव्याख्यान अर्थात् विस्तृत कथन करना चाहिये मन्त्र के अन्त में यह वाक्य शेष है।

भूत, भवत्, भविष्यत् सब ओंकार ही है। सृष्टि का व्यवहार कालकृत है, उस काल को आधार मानकर ओंकार की सर्वात्मता प्रतिपादित की गई है। अर्थात् भूत, प्रर्वतमान, एवं आगामी जो कुछ भविष्य में होगा वह सब ओंकार ही है। कार्य का कारण से अव्यतिरेक है अर्थात् अभेद होता है अतएव कालतत्त्व से परे, जिसका मन एवं वाणी से कथन नहीं किया जा सकता है, वह ब्रह्म–तत्त्व भी ओंकार ही है अतः जो कुछ कहा गया है, एवं जो कार्य से भी परे हैं तथा जो त्रिकालातीत है वह भी ओंकार ही है।

।।२।।

वाचक स्वरूप मभिधाय वाच्य–तत्त्वमाह–सर्वमितिः–

मन्त्र

।।२।। सर्व ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पाद।।२।।

प्रकाश भाष्य

एतन्नामरूपविभागेन भित्रं सर्व जगद् ब्रह्म तदुत्पन्नत्वाद् ब्रह्मण उपादानत्वाच्च, अयमात्मा ब्रह्म अन्तःकरणवृत्तिसाक्षी प्रत्यक्त्वेन प्रसिद्धः आत्मा चेतनो ब्रह्मैव "तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्" इति श्रुतेः। स तत् पदबोध्य आत्मा तथायमात्मा जीवसाक्षित्वेन प्रसिद्धश्चतुष्पाद् उभयोश्चतुष्पादत्वेन तुल्यत्वम्। ननु आत्मन एकत्वात्कथमुभयोरित्युच्यते? सत्यं, भदेस्य व्यावहारिकत्वादभेदस्य च पारमार्थिकत्वाददोषः, सुवर्णकटक कुण्डलादि व्यवहार वत्तस्मात्रास्ति चोद्यावकाश इति ।।२।।

।।२।।

वाचक (ओं) के स्वरूप का कथन करने के पश्चात वाच्य तत्त्व का निर्वचन किया जाता है।

मन्त्रानुवाद

।।२।। यह सब (नाम रूपात्मक) जगत् ब्रह्म है। यह आत्मा ब्रह्म है। वह एवं यह आत्मा चतुष्पाद है। (अर्थात् चार पदों से युक्त है)।।२।।

प्रकाश-भाष्यानुवाद

(एतत्) नाम एवं रूप दो भागों में विभाजित यह समस्त जगत् ब्रह्म है, कारण यह कि ब्रह्म से ही इस की उत्पत्ति होती है एवं ब्रह्म ही इस का उपादान (आश्रय) है।

(अयम्) यह आत्मा ब्रह्म है। अर्थात् अन्तःकरण साक्षी के रूप में प्रत्यक्तया प्रसिद्ध आत्मा चेतन है अतः ब्रह्म ही है। श्रुति कहती है कि उस जगत् की सृष्टि के पश्चात् वह ब्रह्म उसमें ही प्रविष्ट हो गया, यथा "तत्सृष्ट्वातदेवानुप्राविशत्"।

उपर्युक्त श्रुति में कथित तत् (वह) पद द्वारा बोध्य आत्मा एवं अयं पद से निर्दिष्ट यह जीवात्मा साक्षी के रूप में प्रसिद्ध हैं एवं चतुष्पाद निरूपित किये गये हैं। चतुष्पाद होने के कारण उभय आत्माओं में तुल्यता प्रतिपादित की गई है। यहां यह शङ्का उत्पन्न होती है कि एक बार आत्मा के एकत्व का निरूपण करने के पश्चात् पुनः उभय आत्मा ऐसा प्रयोग करने का कारण क्या है? सिद्धान्ती का उत्तर है कि भेद व्यावहारिक है तथा अभेद पारमार्थिक है। इस कारण उभय आत्मा कहने में कोई दोष नहीं है। जिस कारण सुवर्ण में कटक, कुण्डल आदि आभूषणों का व्यवहार होता है उसी प्रकार एक आत्मा का ही भिन्न रूपों में व्यवहार किया जाता है। अतः यहां शङ्का के लिये अवकाश नहीं है।।२।।

।।३।।

प्रथमपादमाह—जागरितेति

मन्त्र

।।३।। जागरित स्थानो बहिः प्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः स्थल भुग् वैश्ववानरः प्रथमः पादः।।३।।

प्रकाश-भाष्य

।।३।। जागरितं स्थानं यस्यासौ जागरितस्थानः स बहिः प्रज्ञः, बहिः शब्दादिविषयेषु प्रज्ञा प्रवणा बुद्धिर्यस्य स आत्मानमविषयी कृत्य अविद्यया केवलं बहिः पदार्थेष्वेव रतिं कुर्वत्रास्त इत्यर्थः। सप्ताङ्गनो माया–विद्या–कला–नियति–राग–काल–जीवाः सप्ताङ्गो व्यष्टि समष्टिरूपाणि अङ्गानि यस्य सः, एकोनविंशति मुखः ज्ञानेन्द्रियपञ्चकं, कर्मेन्द्रियपञ्चकं, तन्मात्रपञ्चकंमहङ्कारतत्त्वं महत्त्त्वं मनस्तत्त्वं प्रकृतितत्त्वमित्येकोनविंशति मुखत्वेन कथ्यते एभिरात्मा शब्दादीन् विषयानुपलभते। स्थूलभुक्स्थूलानि पञ्चमहाभूतानि भुङक्ते इति स्थूलभुक्, शब्दादीनां भूतानां च एकत्वमभिप्रेत्योक्तं पञ्चेति, वैश्वानरः विश्वेनरा यस्य स "नरे च संज्ञायाम्" इति दीर्घः विश्वानर एव वैश्वानरः स्वार्थिकोऽण्। सर्वेषां स्थूल व्यवहर्तृणां नराणामधिष्ठाता विराडित्यर्थः। जीव दृष्टया समष्टिरूपस्याङ्गत्वं, समष्टिदृष्टया व्यष्टेरङ्गत्वमिति विवेकः एष आत्मनः प्रथमः पादः स्वरूप इत्यर्थः।३।।

।।३।।

जागरित पद से आरम्भ किये गये इस मन्त्र के द्वारा आत्मा के प्रथम पाद का निर्वचन किया गया है:—

मन्त्रानुवाद

आत्मा का वैश्वानर नामक यह प्रथम पद है। जागरित अर्थात् जाग्रत अवस्था जिसका स्थान है, बाह्य विषयों में रत् होने से जिसको बहिः प्रज्ञ कहा गया है। इसके सात अङ्ग हैं, एवं उन्नीस मुख हैं तथा यह स्थूल तत्त्वों का भोक्ता होने से स्थूल–भुक कहा गया है।।३।।

प्रकाश-भाष्यानुवाद

जागरितं स्थानं यस्य असौ व्युत्पत्ति के अनुसार इस पाद का स्थान जागरित है अतएव इसको जागरित स्थान कहा गया है।

स बहिः प्रज्ञः–बहिः अर्थात् शब्द आदि विषयों में जिसकी प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि अनुरक्त है एवं आत्मा जिसकी अनुभूति का विषय नहीं है जो केवल बाह्य पदार्थों में ही रति करता है वह बहिः प्रज्ञ है। इस के सात अङ्ग हैं जिनका नाम माया–अविद्या–कला–नियति–राग–काल–जीव है। यह सात अङ्ग व्यष्टि एवं समष्टि रूप है।

ज्ञानेन्द्रिय पञ्चक, कर्मेन्द्रिय पञ्चक, तन्मात्र पञ्चक, अहङ्कार तत्त्व महत्तत्त्व, मनस्तत्त्व, प्रकृतितत्त्व यह उन्नीस मुख हैं। इन मुखों से आत्मा शब्द आदि विषयों को ग्रहण करता है। अतएव इसको एकोनविंशति मुख कहा गया है।

आत्मा का वैश्वानर नामक प्रथम पाद स्थूल पञ्च महाभूतों का भोक्ता है अतएव इसको स्थूलभुक नाम से सम्बोधित किया गयां है। यह आत्मा शब्द आदि तन्मात्राओं का भी उपभोक्ता है

अतएव यहां पञ्चभूतों के साथ तन्मात्राऐं भी सम्मिलित हैं।

वैश्वानरः शब्द की व्युत्पत्ति है विश्वेनरा यस्य स अर्थात् विश्‍ में जो नर रूप है अर्थात् प्राणियों के रूप में अवस्थित है। स्थूल जगत् में व्यवहार कर्ता समस्त प्राणियों का जो अधिष्ठाता विराट् कहा गया है वही वैश्वानर नामक प्रथम पाद है। व्याकरण के 'नं च सेज्ञायाम्' सूत्र के अनुसार दीर्घ हो जाता है अतएव विश्वेनर का रूप विश्वानर बन जाता है। विश्वानर ही 'स्वार्थिकोऽण्' सूत्र के अनुसार वैश्वानर हो जाता है। जिसका अर्थ है समस्त नरों का अधिष्ठाता विराट् स्वरूप। यह समष्टि पक्षीय अर्थ है। व्यष्टि पक्षीय अर्थ के अनुसार स्थूल देह के अधिष्ठाता जीव को वैश्वानर कहा जाता है। जीव की दृष्टि से समष्टि रूप अङ्गी है एवं समष्टि की दृष्टि से जीव अङ्ग है अर्थात् समष्टि अङ्ग है तथा जीव अङ्गी है। इस प्रकार यह आत्मा के प्रथम पाद का स्वरूप है।।३।।

टिप्पणी -

वैश्वानर :– श्रीमद् शङ्कराचार्य ने वैश्वानर पद की दो प्रकार से व्युत्पत्ति की है– (१) विश्वेषां नराणामनेकधा नयनाद्वैश्वानरः अर्थात् सम्पूर्ण नरों को अनेक योनियों में ले जाता है अतः यह आत्मा वैश्वानर कहा जाता है। (२) विश्वश्चासौ नरश्चेति विश्वानरः विश्वानर एव वैश्वानरः। अर्थात् यह विश्व ही नर रूप है। "अपि वा विश्वान् जन्तून् अरः"। ऋ गतौ इत्यस्य छान्दसत्वात् पदाद्यच उपपद विभक्तेश्चालुक। सर्वाणि भूतानि अरः प्रतिगतः प्रविष्टः विश्वानरः प्राणः से जिसकी उत्पत्ति है, यह वैश्वानर हैं।

।।४।।

द्वितीयं पादमाह—स्वप्न स्थान इति

मन्त्र

।।४।। स्वप्नस्थानोऽन्तःप्रज्ञः सप्ताङ्ग एकोनविंशतिमुखः प्रविविक्तभुक् तैजसो द्वितीयः पाद।।४।।

प्रकाश-भाष्य

स्वप्नस्थानः जागरित संस्कारजन्यं स्थानं यस्यासौ, अन्तः प्रज्ञाऽन्तर्हृदि प्रज्ञाबुद्धियस्यासौ, सप्ताङ्ग एकोनविंशति मुखः इति व्याख्यातं, प्रविविक्तभुक् प्रविविक्तं सूक्ष्मं केवलं वासनामयं भुङ्क्त इत्यर्थः, स तैजसः प्रकाशमयः द्वितीयः पादः स्वरूपः।।४।।

मन्त्रानुवाद

।।४।। आत्मा का द्वितीय पाद तैजस है। इस का स्थान स्वप्नावस्था है। यह अन्तः प्रज्ञ है। इसके सात अङ्ग एवं उन्नीस मुख हैं। यह प्रविविक्त अर्थात् सूक्ष्म का भोक्ता है।।४।।

प्रकाश-भाष्यानुवाद

जागरित संस्कारों से जन्य स्वप्न जिसका स्थान है उसकी स्वप्नस्थानः कहा गया है। आत्मा का यह पाद अन्तः प्रज्ञ है। जिसकी प्रज्ञा अर्थात् बुद्धि अन्तः हृदय में है उसको अन्तः प्रज्ञ कहते हैं। इस के सात अर एवं उन्नीस मुख हैं जिनकी व्याख्या तृतीय मन्त्र के भाष्य में कर दी गई है। यह सूक्ष्म तत्त्वों का भोक्ता

है। अतएव सूक्ष्म अर्थात् केवल वासनामय तत्त्वों का भोक्ता हो
से इसको प्रविविक्त भुक् कहा गया है। आत्मा के इस द्वितीय पा
का स्वरूप प्रकाशमय है अतः इस को तैजस नाम से सम्बोधि
किया गया है।।४।।

।।५।।

तृतीयपादं यत्रेत्याह

मन्त्र

।।५।। यत्र सुप्तो न कंचन कामं कामयते, न कंचन स्व
पश्यति, तत सुषुप्तम्। सुषुप्तस्थान एकीभूतः प्रज्ञानघन एवानन्दम
ह्यानन्द भुक् चेतोमुखः प्राज्ञस्तृतीयः पादः।।५।।

प्रकाश-भाष्य

यत्र यस्यामवस्थायां सुप्तो न कंचन कामं काम्यं वि
कामयते इच्छति, न कंचन जागरित–वासना–जन्यं स्वप्नं पश्य
तत्सुषुप्तमित्युच्यते। सुषुप्ति स्थाने एकीभूत एकत्वमापन्नः प्रज्ञानघ
सर्वेषां जाग्रत्स्वप्नज्ञानानां कारणरूपेण घन एक पिण्डीभावो यस्मि
स प्रज्ञानघन एव आनन्दमयः केवलमानन्दमेव भुङ्क्ते चेतोमु
चिद्रूपः प्राज्ञः समष्टिरूपेण प्रकृष्ट ज्ञानवानित्यर्थः तृतीय पादः।।५

।।५।।

मन्त्रानुवाद

।।५।। जिस अवस्था में (प्रसुप्त) जीव न किसी काम
कामना करता है एवं न किसी स्वप्न को देखता है, वह सुषु

अवस्था है। तृतीय पाद में आत्मा चैतन्य–स्वरूप, आनन्द का भोक्ता, एवं एकीभूत होने से प्रज्ञानघन कहा गया है।।५।।

प्रकाश-भाष्य

जिस अवस्था में जीव न तो किसी काम्य विषय की इच्छा करता है और न ही किसी प्रकार की जागरित वासना सेजन्य स्वप्नों को देखता है उस अवस्था को सुषुप्त अवस्था कहा गया है। यह सुषुप्त स्थान आत्मा का तृतीय पाद है। इस अवस्था में समस्त जाग्रत एवं स्वप्नात्मक ज्ञानानुभूति पिण्ड रूप से एकाकार हो जाती है अतएव यहां आत्मा को प्रज्ञानघन निरूपित किया गया है। कारण रूप होने से इसकी घन अर्थात् पिण्ड रूप कहा गया है। इस अवस्था में आत्मा आनन्दमय है अतएव इसको आनन्द–भुक् कहा है। समष्टि रूप होने से यह आत्मा प्रकृष्टतया ज्ञान रूप होता है अर्थात् समस्त जाग्रत् एवं स्वप्नात्मक ज्ञानानुभूति का पिण्ड है अतः चित् रूप होने से इसकी प्राज्ञ संज्ञा दी गई है। यह तृतीय पाद है।।५।।

।।६।।

समष्टिव्यष्टि रूपेणात्मनः पादत्रयं सामान्येन प्रदर्श्य साम्प्रतं सर्वकारणं सर्वेश्वरं नित्यं षड् विधेश्वर्ययुक्तं पादत्रयात्मकं विशेषतः वर्णयन्नाह–एष इति–

मन्त्र

।।६।। एष सर्वेश्वर एष सर्वज्ञ एषोऽन्तर्यामी एषः योनिः

सर्वस्य प्रभवाप्ययौ हि भूतानाम्।।६।।

प्रकाश-भाष्य

एष समष्टि प्राज्ञः सर्वेश्वरः सर्वेषां स्थूलसूक्ष्मकार्यभूतान पदार्थानामीश्वरः स्वामी ईशनशीलः, एषसर्वज्ञः सर्व ज्ञातृज्ञानज्ञे स्वरूपं जानाति वेत्ति इति। समष्टिज्ञानशक्त्यधिष्ठितत्वात् ए सर्वस्य कार्यजातस्य योनिः कारणम्, "जन्माद्यस्य यतः" इ न्यायात्, हि निश्चयेन भूतानामुक्त पदार्थानां प्रभवाप्यय उत्पत्तिविनाशकृदिति "यतो वा इमानि भूतानि जायन्त" इत्यादि सर्व सामर्थ्ययुकतात् ब्रह्मण एव भूतानामुत्पत्तिस्थिति प्रलया भवन्ति "जनिकर्तुः प्रकृति" रितिस्मरणात्। "आनन्दमयोभ्यासात्" इत्य इदमेव कारणत्वेन गृहीतम्। वस्तुतः शक्ति तत्त्वमेवकारणं शिवतत्त कार्यकारणभावरहितमेव। ये शक्तिरूपोपादानकारणं शिवस्तु कत एव उत्पत्तिस्थिति संहारपदेनोपलक्षणेन च पञ्चकृत्यमपि कथयन्ति तेषामपि मतमौपनिषदमेव। उक्तं च– "नारायणं शिवं शान सर्ववेदान्तगोचरम्। सृष्टिस्थितिश्च संहारतिरोधानानुसम्मतम् पञ्चकृत्यस्य कर्तारं नारायणमनामयम्।। (नारायण पूर्व तापिनी) "उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्त" मितिश्रुतेः "सर्वोप्युभय संयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च, प्रकृति यस्योपादानमाधार पुरुषः परः।" (भा. ११–स्क. १६–१६)। ये च कथयन्ति शाक्ताभिमत ब्रह्मोपादानं शक्ति निमित्त कारणमितितेषां मूलं मृग्यम्।।६।।

समष्टि एवं व्यष्टि रूप से आत्मा के पादत्रय का सामान्

निरूपण करने के पश्चात् अब सर्वकारण, सर्वेश्वर, नित्य षड्विध ऐश्वर्य से युक्त, पादत्रयात्मक स्वरूप का विशेष प्रतिपादन इस मन्त्र में किया जा रहा है।

मन्त्रानुवाद

यह पादत्रयात्मक समष्टिरूप आत्मतत्त्व सब का ईश्वर है, यह सर्वज्ञ है, यह अन्तर्यामी है, यह योनि अर्थात् कारण रूप है, यह समस्त भूतों का उद्भव–स्थान है।।६।।

प्र.भा. भाष्यानुवाद

यह समष्टि रूप प्राज्ञ सर्वेश्वर है अर्थात् समस्त कार्य भूत स्थूल एवं सूक्ष्म पदार्थों का ईश्वर है। ईश्वर का अर्थ है ईशनशील अर्थात् स्वामी। ज्ञाता–ज्ञेय–ज्ञान के स्वरूप को जानने के कारण यह सर्वज्ञ कहा जाता है। समष्टि रूप ज्ञान–शक्ति, अर्थात् जाग्रत् एवं स्वप्न आदि अवस्थाओं में अनुभूत ज्ञान की समष्टि में अधिष्ठित होने से यह कार्य रूप में प्रादुर्भूत समस्त जगत् का योनि अर्थात् कारण है। वेदान्त सूत्र के "जन्माद्यस्य यतः" सूत्र का भी यही अभिप्राय है।

यह समष्टि रूप प्राज्ञ निश्चय रूप से भूतों अर्थात् उक्त पदार्थों का प्रभव है तथा उत्पत्ति एवं विनाश का कारण भी है। जैसा कि "यतो वा इमानि भूतानि जायन्त" आदि उप निषद् के प्रमाण से ज्ञात होता है। सर्व सामर्थ्य युक्त ब्रह्म ही भूतों की उत्पत्ति स्थिति एवं प्रलय का कारण है। "जनिकर्तुः प्रकृतिः" स्मृति

वाक्य से भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन होता है। वेदान्त सूत्र के "आनन्दमयोभ्यासात्" सूत्र से भी सर्वेश्वर प्राज्ञ को ही उत्पत्ति स्थिति लय का कारण निरूपित किया गया है। किन्तु वस्तुतः शक्ति तत्त्व ही कारण है तथा शिव तत्त्व कार्य कारण भाव से रहित है।

कतिपय विद्वानों ने अपने मत के अनुसार शक्ति तत्त्व को उपादान कारण एवं शिव को कर्ता कहा है, तथा उत्पत्ति–स्थिति–संहार पद से उपलक्षण के रूप में शिव के पञ्चकृत्यों (अर्थात् जन्म–स्थिति–लय–तिरोधान–अनुग्रह) का प्रतिपादन किया है इन का मत भी उपनिषदों के अनुरूप ही है। इस सिद्धान्त के समर्थन में नारायणपूर्वतापिनी उपनिषद् का वाक्य उपलब्ध है:– "नारायणं शिवं शान्तं सर्ववेदान्त गोचरम्। सृष्टिस्थितिश्च संहार तिरोधानानु सम्मतम्।। पञ्चकृत्यस्य कर्तारं नारायणमनामयम्।। एवं "उमासहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तं" श्रुति।।

इन प्रमाणों के अतिरिक्त भागवत का प्रमाण भी है :–

"सर्वोप्युभय–संयुक्तः प्रकृत्या पुरुषेण च। प्रकृतिर्ह्यस्योपादान माघारः पुरुषः परः"।। (मा. ११ स्क. १६–१९) अर्थात् समस्त विश्व प्रकृति एवं पुरुष से संयुक्त है। प्रकृति इसका उपादान कारण तथा पुरुष निमित्त कारण है।

आचार्य वल्लभ का एक अन्य मत है, जिसको शाक्त मत के समकक्ष कहा जाता है, जिसके अनुसार ब्रह्म को जगत् का

उपादान कारण एवं शक्ति को निमित्त कारण निरूपित किया गया है किन्तु इस मत के अनुमोदन के लिये अभी उपनिषदों का प्रमाण ढूंढना शेष है।।६।।

पादत्रयेण शिवाभिन्नशक्तितत्त्वस्य महिमानं प्रदर्श्य इदानीं चतुर्थपादस्वरूपं केवलं शिवतत्त्वं प्रदर्शयन्नाहनान्तः प्रज्ञमित्यादि। यद्यपि शक्तितत्त्वाद्व्यतिरिक्तः शिवः कदापि भवितुं नार्हति तथापि बुद्धयैव केवलं भेदं कृत्वा स्वरूपमात्र–विवक्षया आहः–

मन्त्र

।।७।। नान्तः प्रज्ञं न बहिः प्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम्।। अदृष्टमव्यहार्यमग्राह्यमलक्षणमव्यपदेश्यकेकात्म-प्रत्ययसारं प्रपञ्चोपशमं शांतं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा विज्ञेयः।।।७।।

प्रकाश-भाष्य

तच्छिवतत्त्वं नान्तः प्रज्ञमन्तःप्रज्ञा जागरितवासना जन्य स्वप्नविषयाणि तद्रहितं, न बहिः प्रज्ञं स्थूल विषयक प्रवृत्तिरहितं, नोभयतः प्रज्ञमुभयसन्धिज्ञानरहितं, यथा न प्रज्ञानघनं सुषुप्तिविलक्षणं, न प्रज्ञं, नाप्रज्ञमपि चराचर विलक्षणत्वात, अदृष्टं दृष्टविलक्षणमिन्द्रियाग्राह्यत्वात्, अव्यवहार्य नामरूपात्मकस्य जगतो तिरोभूतत्वाद् व्यवहारानर्हम्, अग्राह्यं निरवयवत्वात् सावयवं हि ग्राह्यत्वेन व्याप्तम्। लक्ष्यत्वावच्छिन्नं मिथ्यात्वेनाविनाभूतमतएवालक्षणम्, लक्षण प्रवृत्तिरहितं स्वप्रभत्वात्, लक्षणं न प्रकाशयितुमयोग्यमित्यर्थः।

अचिन्त्यं मनसा मन्तुमशक्यम्। अव्यपदेश्यं हेतुवादेन निर्देश्टुमशक्यमनुमानप्रवृत्तेर्वहिर्भूतत्त्वात्। व्याप्ति निष्ट स्मृतिकरणता निरूपितसाध्यत्वावच्छेदकावच्छिन्नं हि हेतुत्वावच्छेदकावच्छिनेन साधितं भवति तच्च मिथ्या विषयत्वमेव भेदविषयत्वात्तस्येत्यभिप्रायः। एकात्मप्रत्यय सारं एक आत्मा एव प्रत्ययः सारो मुख्योऽस्मिन् तत् केवलं स्वेनैवानुभवितुं शक्य इतिभावः। यतः प्रपञ्चोपशमं प्रपञ्चस्य जगत उपशमो यत्र तत् प्रपञ्चोपशमं शिवरूपेण तिरोधान कार्य-कारण बुद्धयोर्निवर्तनात् अतएव शान्तं क्रियाभाववत्वेन शान्तजलाशय तरङ्गवत् इति भावः। शिवं कल्याणस्वरूपं सच्चिदानन्दस्वरूपमद्वैतं द्वैतरहितं निवृत्त प्रपञ्चाधिष्ठानमित्यर्थः। चतुर्थ विश्वतैजसप्राज्ञापेक्षया चतुर्थ मात्मत्वेन तु एकमेव मन्यनते तत्त्वविदः, स आत्मा विज्ञेयो मुमुक्षुभिः इत्यर्थः। अथातो ब्रह्म जिज्ञासेति न्यायात्। अद्वैतस्य मुख्यत्वात् प्रपञ्चस्य शक्तिविलसितत्वाच्च -सामरस्येन शिवशक्त्योरभेदावस्थायां स्थितायां प्रपञ्चाप्रतीतेर्मृदि घटो यथा। शक्तितत्त्वमपि शिवस्यात्मभूतत्वेन सम्मतम्। "ननु अद्वैते सिद्धान्ते प्रपञ्च मिथ्यात्वं श्रीभगवत्पादैः प्रतिपादितम्। तत्कथमेवंस्यादितिचेत्र-तच्च माया तत्त्वपरम् इति मन्तव्यम्। तथा च "मायामात्रमिदं सर्वमद्वैतं परमार्थतः" "नेत नानास्ति किञ्चन" माया कल्पितस्य जगतोऽधिष्ठानं ब्रह्मतत्त्वं रज प्रतीतिजनकशुक्तिवत्। वस्तुतस्तु ब्रह्म परिणामभूतत्वं जगतस्तेन जगतसत्यत्वं मृद्घटवत् स्वीकारणे अद्वैत श्रुतीनाम विरोधः द्वैतनिर्वाहश्च। एतावन्मात्रेण व्यवस्थोपपत्तेः सर्वस्य जगतो

मिथ्यात्वकल्पनं निरर्थकमेव भेदमात्रस्य मिथ्यात्वात्। एतेन विशिष्टाद्वैताजातवादादय आपेक्षिका एव मन्तव्याः। कबलमद्वैतदृढीकरणार्थ युक्तिवादमेवाश्रितमैव तेषां प्रवृत्तिः। अजातवादस्य कारणे मतिदार्ढयार्थमेव प्रवृत्तिः। श्री भास्कररायाचार्येण द्वैताद्वैतमेव व्यवस्थापितं–शास्त्रस्य सत्यावेदकत्वरूप प्रामाण्यनिर्वाहाय सर्वेषां वेदान्तानामद्वैते पारमार्थिके परब्रह्मणि साक्षात्परम्परया वा तात्पर्यस्य वक्तव्यत्वाद् भेदप्रतिपादकशास्त्रस्य पञ्चपाङ्गुलग्रासावेदकोपराग–शास्त्रस्येव व्यावहारिक दृष्टयैव प्रवृत्तिरिति न भेदाभेदयोः समकक्षतेतिभावः।।७।। (ललितासहस्रनाम भाष्य १८६ ।।

प्रकाश-भाष्य-भाष्यानुवाद

उपर्युक्त वैश्वानर, तैजस एवं प्राज्ञ तीनों पादों में शिव से अभिन्न शक्ति तत्त्व की महिमा का निरूपण कर चौथे पाद के स्वरूप केवल शिव तत्त्व का "नान्तः प्रज्ञं" आदि मन्त्र के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। यद्यपि शिव तत्त्व कदाचित् भी शक्ति तत्त्व से व्यतिरिक्त नहीं है तथापि भेद की केवल बौद्धिक कल्पना करके शिव के स्वरूप के प्रतिपादन की इच्छा से यह मन्त्र कहा गया है।

मन्त्रार्थ

शिव न अंतः प्रज्ञ है, न बहिः प्रज्ञ है और न इस को उभय प्रज्ञ ही कहा जा सकता है। यह न प्रज्ञान घन है, न प्रज्ञ है और

अप्रज्ञ भी नहीं है। यह शिव जिसको चतुर्थ पाद मान्य किया गया है अदृष्ट, अव्यवहार्य, अग्राह्य, अलक्षण, अव्यपदेश्य, एकात्म प्रत्यय का सार है जिसमें प्रपञ्च का शमन हो जाता है। अतएव यह शान्त शिव ही अद्वैत तत्त्व है, जिसको चतुर्थपाद कहा है। शिव नामक चतुर्थपाद को ही आत्मा जानना चाहिये।।७।।

प्रकाश-भाष्यानुवाद

यह शिव तत्त्व अन्तः प्रज्ञ नहीं है। जाग्रदावस्था में अनुभूत विषयों से जनित वासना से स्वप्न के विषयों का प्रादुर्भाव होता है जिसको अन्तः प्रज्ञ कहा जाता है। शिव तत्त्व अन्तः प्रज्ञ अर्थात् स्वप्न में अनुभूत विषयों से रहित है अतः शिव को अन्तः प्रज्ञ नाम से सम्बोधित नहीं किया जा सकता है।

यह स्थूल विषयक प्रवृत्ति से भी रहित है अतः यह वहिः प्रज्ञ भी नहीं है।

अन्तः प्रज्ञ एवं वहिः प्रज्ञ के सन्धि ज्ञान से रहित होने के कारण यह उभय–प्रज्ञ भी नहीं कहा जा सकता है।

शिवावस्था की अनुभूति सुषुप्ति से विलक्षण है अतः यह प्रज्ञान घन भी नहीं है।

चराचर सृष्टि से विलक्षण होने के कारण शिव तत्त्व न प्रज्ञ है और न ही अप्रज्ञ है।

शिव तत्त्व का ग्रहण (ज्ञान) इन्द्रियों द्वारा सम्भव नहीं है अतः दृष्ट पदार्थों से भिन्न होने के कारण इसको अदृष्ट कहा है।

शिव के अन्तर्गत नाम–रूपात्मक जगत् का तिरोधान हो जाता है अतः यह व्यवहार के योग्य नहीं है। व्यवहार केवल नाम रूपात्मक जगत् का होता है अनाम तथा अरूप का नहीं अतः इसको अव्यवहार्य कहा गया है।

अग्राह्य :- शिव के अङ्गों का निरूपण सम्भव नहीं है। इन्द्रियों द्वारा केवल सावयव का ग्रहण होता है। शिव तत्त्व निरवयव है अतः इसको अग्राह्य कहा है।

अलक्षण :- लक्षण से तात्पर्य है परिभाषा। जो लक्ष्यत्व से अविच्छिन्न है उसका मिथ्यात्व से अविनाभाव सम्बन्ध होता है। अर्थात् केवल मिथ्या पदार्थ का ही लक्षण सम्भव है सत्य का नहीं। शिव सत्य स्वरूप है अतः अलक्षण है। स्वप्रभ अर्थात् स्वयं प्रकाशरूप होने से शिव किसी लक्षण से लक्षित होने योग्य नहीं है।

अव्यपदेश्य :-जिसका मन से मनन नहीं किया जा सकता वह अव्यपदेश्य कहा जाता है। शिव तत्त्व अनुमान प्रवृत्ति से बाहिर है अतः इसका हेतुवाद अर्थात् तर्क के द्वारा निर्देश नहीं किया जा सकता है। तर्क का सिद्धान्त है कि व्याप्ति से निष्ठित कारण के द्वारा साध्य की सिद्धि होती है। धूम्र को देखने पर ही अग्नि का अनुमान होता है। यह अनुभूति का विषय है कि जहां जहां धूम्र होता है वहां अग्नि का होना निश्चित है। पूर्व में देखे गये धूम्र एवं अग्नि के साहचर्य की स्मृति से ही वर्तमान देखे गये धूम्र से अग्नि का अनुमान होता है। अतः अग्निरूप साध्य की सिद्धि में स्मृति ही

हेतु है। स्मृति भेद का विषय है, भेद मिथ्या है अतएव मिथ्यात्व का विषय होने से हेतुवाद शिव के निरूपण में कारण नहीं हो सकता है। अतः शिव तत्त्व मन के क्षेत्र से परे होने के कारण अव्यपदेश्य है। (यहां भाष्यकार ने "व्याप्तिनिष्ठि से प्रारम्भ होने वाले वाक्य में नव्य न्याय की भाषा का प्रयोग किया है।)

शिव तत्त्व की अनुभूति आत्मा से ही सम्भव है अतः यहां एकात्मप्रत्यय सार शब्द का प्रयोग किया जाता है। शिव में जगत् रूप प्रपञ्च का शमन हो जाता है अर्थात् जगत का शिव के अंतर्गत तिरोधान हो जाता है अतः इसको प्रपञ्चोशम नाम से कहा है। कार्य कारण बुद्धि की निवृत्ति हो जाने पर क्रिया का व्यापार समाप्त हो जाता है। अतएव क्रिया के अभाव में शिव का स्वरूप उसी प्रकार शान्त होता है जिस प्रकार वायु के अभाव में जलाशय निस्तरङ्ग हो जाता है। अतः शिवावस्था को शान्त शब्द से सम्बोधित किया है। कल्याणप्रद सच्चिदानन्द स्वरूप होने से इसका नाम शिव है एवं प्रपञ्चाधिष्ठान से निवृत्त द्वैत रहित होने से अद्वैत कहा है।

आत्मा के विश्व, तैजस, प्राज्ञ, नामक तीन पाद कहे हैं, इनकी अपेक्षा यह चौथा पाद है अतः इसका तुर्य नाम से सम्बोधित किया है। तुर्य शब्द का अर्थ है चतुर्थ। वस्तुतः मुमुक्षुओं को चारों पादों से युक्त आत्मा को एक ही जानना चाहिये। ब्रह्मसूत्रों के "अथातो ब्रह्म जिज्ञासा" सूत्र में भी आत्मा के एकत्व का प्रतिपादन किया गया है।

इस प्रकार अद्वैत तत्त्व मुख्य है। जगद्रूप प्रपञ्च शक्ति का विलास है तथा सामरस्य के कारण शिवशक्ति की अभेद अवस्था में स्थित प्रपञ्च की अप्रतीति उसी प्रकार है जिस प्रकार प्रकट होने से पूर्व घट की मृत्तिका में स्थिति कही जाती है। अर्थात् जिस प्रकार निर्माण होने से पूर्व मृत्तिका में घट का स्वरूप छिपा रहता है उसी प्रकार शिवशक्ति की सामरस्य अवस्था में जगत रूप प्रपञ्च का स्वरूप अन्तर्हित होता है।

इस प्रकार परमार्थिक दृष्टि से शिवशक्त्यात्म सिद्धान्त स्वीकार करने से श्री भगवत्पाद के अद्वैत सिद्धान्त के निरास की शङ्का उत्पन्न होती है जिसमें प्रपञ्च को मिथ्या निरूपित किया गया है। किन्तु यह शङ्का उचित नहीं है कारण है कि भगवत् पाद ने केवल माया पर्यन्त तत्त्वों का प्रतिपादन किया है। इसके अतिरिक्त "माया मात्रमिदं सर्वं" 'नेह नानास्ति किञ्चन" आदि वाक्यों से प्रकट होता है कि जिस प्रकार शक्ति रजत की प्रतीति का जनक है उसी प्रकार माया–कल्पित जगत का अधिष्ठान ब्रह्म है। वस्तुतः जगत ब्रह्म का परिणाम हैं। जिस प्रकार मृत्तिका में घट की स्थिति है अर्थात् मृत्तिका ही सत्य है जो नाना रूपों में परिणत हो जाती है। उसी प्रकार ब्रह्म सत्य है जो नाना रूपों में परिणत हो जाता है। इस प्रकार जगत को ब्रह्म का परिणाम स्वीकार कर लेने पर अद्वैत प्रतिपादक श्रुतियों का विरोध किये बिना ही द्वैत का निर्वाह हो जाता है। इस प्रकार से प्रतिपादित व्यवस्था का स्वीकार कर लेने मात्र से समस्त जगत के मिथ्यात्व की कल्पना निरर्थक हो

जाती है केवल भेद मात्र को मिथ्या मान्य कर लेने से द्वैत का निरास हो जाता है। अर्थात् ब्रह्म एवं जगत में भेद की कल्पना मात्र मिथ्या सिद्ध होती है न कि जगत्। इस युक्ति के आश्रय से विशिष्टाद्वैत एवं अजातवाद आदि सिद्धान्त आपेक्षिक मानना ही उचित है। युक्तिवाद के आश्रय से इन सिद्धान्तों को प्रवृत्ति केवल अद्वैत मत को दृढ़तर प्रतिपादित करने की ओर से सिद्ध होती है इस प्रकार कारण रूप ब्रह्म में मति दृढ़ करने के हेतु अजातवाद की प्रवृत्ति है।

आचार्य भास्करराय ने द्वैताद्वैत मत को व्यवस्थापित किया है। शास्त्र सत्य का आवेदक है। अतः शास्त्र केसत्य–प्रतिपादक स्वरूप की प्रामाणिकता के निर्वाह के हेतु समस्त वेदान्त शास्त्र पारमार्थिक दृष्टि से परब्रह्म के अद्वैत स्वरूप का बोधक है एवं साक्षात् परम्परा से भी अद्वैत मत का ही समर्थन सिद्ध है। ''हाथ से भोजन करो'' इस प्रकार आवेदन करने की भेद–प्रतिपादक शास्त्र की प्रवृत्ति केवल व्यावहारिक है पारमार्थिक नहीं अतः भेदाभेद सिद्धान्त अद्वैत के समकक्ष नहीं है।

संक्षिप्तं विवरणम्

''एकमेवाद्वितीयम्'' इति श्रुत्युक्तरीत्या उक्तैः प्रकारैरद्वैतोपदेशः प्रदर्शितः। परमतत्त्वमवाङमनसयोरविषयत्वेन सर्वत्रवेदान्तेषु निश्चितम्। तच्च ''अयमात्मा ब्रह्म, ''तत्त्वमसि, ''अहं ब्रह्मास्मि'' इत्यादि वाक्यैर्ज्ञायते। तस्मादेव पराशक्त्या कारणं तत्त्वमभिव्यज्यते

अन्तर्यामितत्त्वं च तदेव प्रकाशविमर्शात्मकं कारणं जगत् इति सिद्धान्तः आगम विदाम्। शक्तिसाहचर्येणैव जगद् रचनायाः सम्भवात्। उक्तं च—"जगत्कारणमापन्नः शिवो यो मुनिसत्तमः। तस्यापि सा भवच्छक्तिस्तया हीनो निरर्थकः।" "शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं" मित्यादि। तुरीये शिवेऽपि स्वरूपभूतेयं महाभागा वर्तते। तथा चाहुर्भगवत्यादाचार्याः—"परास्यशक्तिर्विविधैव श्रूयते, "एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगात्" इति श्रुतेश्च। शिवशक्तिस्वरूपकमेव महाविन्दुस्तस्मान्नादः सम्भवति तद् शब्दब्रह्मेति कथ्यते। उक्तं च—"विन्दोस्तस्माद् भिद्यमानाद् रवोऽव्यक्तात्मकोऽभवत्। स एव श्रुतिमापन्नः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।" उक्त च—"विन्दोस्तस्माद् भिद्यमानाद् रवोऽव्यक्तात्मकोऽभवत्। स एव श्रुतिमापन्नः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।" परापश्यन्ती—मध्यमा—वैखरीति चतस्रः संज्ञास्तस्यैव अवस्थाभेदेन भवन्ति। "चत्वारि वाक् परिमिता पदानि" इति श्रुतेः। सर्वा वाच ओंकार एवान्विताः सन्ति सर्वासां कारणत्वात्। "ओंकार एव सर्वा वाक् स्पर्शोष्मभिर्व्यज्यमाना नानारूपा भवति" इति श्रुतेः। ओंकार एव स्वभेदैश्चतुर्भिर्विराड् हिरण्यगर्भेश्वरशिवतत्त्वाख्यं वाच्यंवाचकरूपेण विषयीकरोति। तदवच्छिन्नश्चेतनः सादाख्यतत्त्वं मन्त्रेश्वरो वा कथ्यते तदधीनाः मन्त्राः सिद्धाः साधकाश्च, ओमित्येकाक्षरमित्यनेनात्र दर्शितम्। ईश्वरतत्त्वं समष्टिप्राज्ञः "एष सर्वज्ञ" इत्यादिनोपदिष्टम्। अयमात्माब्रह्मेति महावाक्यं सर्वशास्त्रसमन्वयात्मकं विद्यातत्त्वमिमानि शुद्धतत्त्ववाच्यानि पञ्चतत्त्वानि, परब्रह्मणः स्वरूपभूतान्येव।

चतुर्विधःतत्त्वस्वरूपमुक्तम्। "मायान्तमात्मतत्त्वं विद्यातत्त्वं सदाशिवान्तं स्यात्। शक्तिशिवौ शिवतत्त्वं तुरीयतत्त्वं समष्टिरेतेषाम्।" एतदनन्तरं मायातत्त्वेन तादात्म्यीकृत्य जीवतत्त्वं हिरण्यगर्भविराण्नामकं समष्टिरूपेणाविर्भवति। विद्यातत्व मेवान्योन्याभावरूपभेदबुद्धिप्राधान्यं सूक्ष्मतत्त्वेषु मायातत्त्वमुच्यते अनेनैव द्वैतं भवति। अपूर्णत्वाल्पत्वदुःखित्वादिमन्यमानं जीवतत्त्वमुच्यते। प्राज्ञःतैजसादिः तस्यैव अवस्थाभेदाः। कलाविद्या (किंचिज्ज्ञत्वरूपम्) रागः, कालो, नियतिः सप्तैतानि शुद्धाशुद्धरूपाणि तत्त्वानि। किंचित्कर्तृत्वरूपं कलातत्त्वं, रागो विषयेषु प्रीतिः सृष्टिव्यवहारं व्यञ्जयन्ती कालाख्या शिवस्य शक्तिः, यत् त्रिकालातीतमित्यादिना सूचितम्। पञ्चानां कञ्चुकानामुपलक्षणं चैतत्। अवशमात्मानं कृत्याकृत्येषुनियोक्त्री शक्तिः नियतिः। अपूर्णा किंचिज्ज्ञत्वरूपाशक्तिर्विद्यातत्त्वम् "सप्ताङ्ग" इति पदेनात्र सूचितम्। एतत्सर्वं जीवतत्त्वेऽन्तर्गतं बोद्धव्यम्। चतुर्विंशति संख्याकानि प्रकृतिमारभ्य पृथिवीपर्यन्तानि जातानि तत्त्वानि सांख्यप्रसिद्धानि "एकोनविंशतिमुखः" इत्यनेनोपवर्णितानि। "मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुषः" (सां०का० ३)। इमानि अशुद्धतत्त्वानि कथ्यन्ते। नारदपरिव्राजकोपनिषदि "षट्त्रिंशतत्तत्त्वातीतः" इत्युक्त्वा ततः पश्चात् माण्डूक्यमन्त्राः कथितास्तेन ज्ञायते तत्त्वानामस्यामुपनिषदि समावेशो भवति। "ब्रह्माण्डादिशिवान्तायाः षट्त्रिंशत्तत्त्वसंह्रतेः। भगश्च व्याप्यवृत्तित्वमैश्वर्यं महिमाह्वयम्। (परमात्मिकोपनिषद् १००)। शिवशक्त्योः परिणामभूतानि सर्वाणि,

त्रिगुणमधिकृत्य ब्रह्मविष्णुरुद्रेति संज्ञाभिः स एव भगवान् शिवो व्यवहरति इति समुदितार्थः। सर्वं ह्येतद् ब्रह्मेति उक्तत्वात्। मायया अल्पीभावमाप्तं जीवतत्त्वं शुद्धविद्यां लब्ध्वा शिवत्वं लभते। "ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशै" इति श्रुतेः, आगमेषु लज्जाघृणादिं पाशाष्टकं प्रसिद्धमस्ति। श्री गौडपादैः अजातवादः समर्थितः सतुयौक्तिक एव। वेदेषु जगत्सत्यत्वमपि श्रूयते "विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्च न प्रमिनन्ति वाम्" (ऋ०सं० २–६–३–२)। "तुच्छेनाभ्यवपिहितं यदासीत्" (ऋ०सं० ८–७–१७–३)। इत्यस्मिन् मन्त्रे मिथ्यार्थ परित्यजय सूक्ष्मार्थस्य विवक्षणात्। सत्यस्य सत्यमिति श्रुतेस्तु व्यावहारिकपारमार्थिकयोर्भेदनिरूपणे संगतिः। मिथ्यात्वं तु केवलं जगदन्तर्गतभेदमात्रे मायाकल्पिते चरितार्थमुक्तप्रकारेण इति संक्षेपः।।

संक्षिप्तं विवरणम्

"एकमेवाद्वितीय" परम सत्य एक अद्वितीय ही है श्रुति के इस वाक्य के अनुसार अद्वैत का ही उपदेश किया गया है। समस्त वेदान्त में निश्चित रूप से परम तत्त्व को वाक् एवं मन का विषय प्रतिपादित नहीं किया गया है। परम तत्त्व ब्रह्म का ज्ञान "अयमात्मा ब्रह्म", "तत्त्वमसि", अहं ब्रह्मास्मि" इत्यादि श्रुति वाक्यों के द्वारा होता है। आगम शास्त्र का मत है कि उस वागात्मक पराशक्ति के कारण तत्त्व की अभिव्यञ्जना होती है। प्रकाश–विमर्शात्मक कारण–जगत् भी वही अन्तर्यामी तत्त्व है। शक्ति के साहचर्य से ही जगत की रचना सम्भव है कहा भी है:–

"जगत्कारणमापन्नः शिवो यो मुनिसत्तमाः तस्यापि साभवच्छक्तिस्तया हीनो निरर्थकः।।" अर्थात् जो शिव जगत का कारण है वह परा उसकी भी शक्ति है एवं उसके बिना वह निरर्थक है। तथा

"शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्" वाक्य द्वारा सौन्दर्य लहरी में श्रीमद् शङ्कराचार्य ने भी इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। तुरीय–शिव में भी महाभागा परा की स्थिति है। सौन्दर्य लहरी नामक इसी ग्रन्थ में दुरधिगम निःसीम महिमा परा को तुरीया कहा हैः–

"तुरीया कापि त्वं दुरधिगम निःसीम महिमा" (सौं. ल.) इसके अतिरिक्त श्रुति भी कहती है :– "परास्य शक्ति र्विविधैव श्रूयते" तथा "एकोऽवर्णो बहुधा शक्ति योगात्"

महा विन्दु शिव–शक्ति का स्वरूप है उससे नाद की उत्पत्ति होती है जो शब्द ब्रह्म नाम से सम्बोधित की जाती है। कहा भी हैः–

"विन्दोस्तस्माद् भिद्यमानाद् रवोऽव्यक्तात्मकोऽभवत्।
स एव श्रुतिभापन्नः शब्द ब्रह्मेति कथ्यते।।"

उसी शक्ति के अवस्था भेद से परा, पश्यन्ती, मध्यमा, वैखरी चार नाम हैं। श्रुति में भी इन चार अवस्थाओं की चर्चा है। कहा है, "चत्वारि वाक् परिमिता पदानि" समस्त वाणी का कारण ओंकार है अतएव ओंकार में ही समस्त वाक् अन्वित है। श्रुति कहती है कि "ओंकार एव सर्वा वाक्, स्पर्शोष्मभिः व्यज्यमाना नाना

रूपा भवति"। अर्थात् स्पर्श एवं ऊष्माण वर्णों द्वारा अभिव्यञ्जित समस्त वाक् ओंकार ही है जो नाना रूपों में व्यक्त होता है। विराड्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर, शिव नामक स्वगत भेदात्मक वाच्य तत्त्वों का स्वयं ओंकार ही वाचक रूप से विषयीकरण करता है। वाच्य तत्त्व स्वयं वाचक रूप से ओंकार के ही विषय हैं। ओंकार से अविच्छिन्न चेतन तत्त्व सदाशिव है जो मन्त्रेश्वर नाम से भी कहा जाता है। मन्त्र, सिद्ध एवं साधक सदाशिव के अधीन हैं, यह तथ्य ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म मन्त्र के द्वारा प्रदर्शित किया गया है। छटवें मन्त्र में "एष सर्वेश्वर, एष सर्वज्ञ" आदि वाक्यों में ईश्वर तत्त्व को समष्टि प्राज्ञ के रूप में प्रतिपादित किया गया है। 'अयमात्मा ब्रह्म' द्वितीय मन्त्र का यह महावाक्य समस्त शास्त्र की समन्वयात्मकता का द्योतक है।

यह विद्यातत्त्व शुद्ध नाम से सम्बोधित पञ्चमहाभूत हैं जो परब्रह्म के स्वरूप हैं। तत्त्वों का चतुर्विध स्वरूप है जिसको विराड् आदि नाम से कहा गया है।

आत्म तत्त्व माया पर्यन्त एवं विद्या तत्त्व सदाशिव पर्यन्त है। शिव–शक्ति (एकत्र) का नाम शिव तत्त्व है इनका समष्टि रूप तुरीय तत्त्व है। इसके पश्चात् माया के साथ एकीकृत जीव हिरण्यगर्भ है जिसको विराड् कहा जाता है। विराड् का शिव–शक्ति के समष्टि रूप से अविर्भाव होता है। अन्योन्य अभाव रूप, भेद–बुद्धि–प्रधान विद्या तत्त्व ही सूक्ष्म तत्त्वों के अन्तर्गत माया तत्त्व के नाम से कहा जाता है। माया तत्त्व से ही द्वैत की उत्पत्ति

होती है।

जो स्वयं को अपूर्ण, अल्प, दुःखी आदि मानता है वह जीव है। प्राज्ञ–तैजस आदि उसी की अवस्थाओं के भेद हैं।

कला, विद्या, राग, काल, नियति, सहित माया एवं जीव सात शुद्धाशुद्ध तत्त्व हैं। किञ्चित् ज्ञातृत्व विद्या तथा किञ्चित् कर्तृत्व रूप कला तत्त्व है। विषयों में प्रीति राग है। शिव की कला नामक शक्ति सृष्टि के व्यवहार का अभिव्यञ्जन करती है, त्रिकालातीत आदि शब्दों से प्रथम मन्त्र में सूचित किया गया है। यह पञ्च कञ्चुकों का उपलक्षण है। अवश जीव को कृत्य तथा अकृत्य में नियुक्त–कर्तृ शक्ति का नाम नियति है। जिस शक्ति के द्वारा जीव आदि को अपूर्ण एवं किञ्चित् ज्ञाता रूप में मान्य करता है वह शक्ति विद्या नाम से सम्बोधित है। यहां जो सप्ताङ्ग नाम से सूचित किया है वह सब जीव तत्त्व के अन्तर्गत है। प्रकृति पृथिवी पर्यन्त सांख्य शास्त्र में प्रसिद्ध चोवीस तत्त्वों को यहां उन्नीस मुख के नाम से प्रदर्शित किया है। "मूल प्रकृतिरविकृतिर्महदाद्याः प्रकृति विकृतयः सप्त, षोडशकस्तु विकारो न प्रकृतिः न विकृतिः पुरुषः" चौवीस तत्त्वों को अशुद्ध तत्त्व कहा जाता है। नारद परिव्राजकोपनिषद में षट्त्रिंशत तत्त्वातीत अर्थात् छत्तीस तत्त्वों से अतीत तत्त्व का निरूपण करने के पश्चात् माण्डूक्य मन्त्रों का कथन किया गया है जिसके कारण ज्ञात होता है कि प्रस्तुत उपनिषद् में तत्वों को समाविष्ट किया है।

परमात्मोपनिषद् में ब्रह्माण्ड से शिव पर्यन्त छत्तीस तत्त्वों के

समुदाय को ईश्वर की ही महिमा कहा गया है। "ब्रह्माण्डादि शिवान्तायाः षट् त्रिंशत्तत्वसंह्रतेः, भगश्च व्याप्य वृत्रित्वमैश्वर्य महिमाह्वयम्।।"

इस प्रकार समस्त तत्त्व शिव–शक्ति के ही परिणाम हैं, सत, रज तम तीन गुणों के आधार से कल्पित ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र नाम से भगवान शिव की व्यवह्रत होते हैं। यह सब ब्रह्म ही है। माया के कारण अल्पता को प्राप्त जीव शुद्ध–विद्या के प्रभाव से पुनः शिवत्व को प्राप्त करता है। श्रुति कहती है "ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः" अर्थात् देवता का ज्ञान हो जाने पर समस्त पाशों से मुक्त हो जाता है। आगम शास्त्र में लज्जा, घृणा, शङ्का, भय, जुगुप्सा, कुल, शील, जाति नामक आठ पाशों का विवेचन है।

घृणा शङ्का भयं लज्जा, जुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शील च जातिश्चेत्यष्टौ पाशाः प्रकीर्तिताः।।

आचार्य श्री गौढपाद से अजातवाद का समर्थन किया है वह केवल युक्तिवाद ही है।

वेदों में ऐसी श्रुतियां भी उपलब्ध है जो जगत् के सत्यत्व की समर्थक हैं :– यथा–

"विश्वं सत्यं मघवाना युवोरिदापश्च न प्रमिनन्ति वाम्।" ऋ० सं० २–६–३–२ तथा– "तुच्छेनाम्वपिहितं यदासीत्" (ऋ०सं. ८–७–१७–३) मन्त्र में मिथ्या अर्थ का परित्याग कर सूक्ष्म अर्थ का निर्वचन किया गया है। अर्थात् जगत् को मिथ्या न कहकर

मन्त्र में इसको सूक्ष्म प्रतिपादित किया है। इस प्रकार अर्थ करने से जो श्रुति द्वारा ब्रह्म को (सत्यस्य सत्यं) अर्थात् सत्य का ही सत्य कहा गया है इस वचन का भी व्यवहारिक एवं पारमर्थिक भेद निरूपण में निर्वाह हो जाता है। इस प्रकार मिथ्यात्व तो केवल जगत् के अन्तर्गत माया कल्पित भेद मात्र में चरितार्थ होता है न कि जगत् में।

इति संक्षेपः

टिप्पणी :- इस प्रकार उपनिषद् के भाष्य में भाष्यकार श्री स्वामी जी महाराज गुरुवर ने भेद एवं भेदाभेद प्रतिपादक मतों का निरस्त कर वेदान्त के अद्वैत प्रतिपादक मतों से आगमोक्त अद्वैत के स्वरूप का सामञ्जस्य स्थापित किया है। अजातवाद आचार्य गौढपाद का मत है। आचार्य ने माण्डूक्य उपनिषद् पर कारिकाओं की रचना का अजातवाद एवं अस्पर्शयोग का प्रतिपादन किया है। पूज्य आचार्य ने प्राणत्मवाद, भुतात्मवाद, गुणात्मवाद, तत्वात्मवाद, देवात्मवाद, वेदात्मवाद आदि अनेकों मतों का युक्तिपूर्वक खण्डन किया है। तथा जगत् रूपी प्रपञ्च को स्वप्न, माया अथवा गन्धर्वनगर के समान प्रतिपादित किया है। आचार्य के मत में एक अद्वैत तत्त्व के अतिरिक्त उत्पत्ति, प्रलय, वद्ध, साधक, मुमुक्षु और मुक्त किसी भी प्रकार का व्यवहार नहीं। यही परामर्थता है।

यथा–

।।८।।

शिवतत्त्वमुपदिश्य तत्स्वरूपाधिगमाय साधन श्रेष्ठं प्रणवं वक्तुं प्रक्रमते :–

भाष्यानुवाद

शिव तत्त्व का उपदेश करने के पश्चात् उनके स्वरूप के ज्ञान के लिए साधनों में श्रेष्ठ प्रणव का निरूपण करते हैं :–

मन्त्र

।।८।। सोऽयमात्माध्यक्षरमोंकारोऽधिमात्रं, पादा मात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकार इति।।८।।

न निरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च साधकः।

न मुमुक्षुर्न वैमुक्त इत्येषा परमार्थता।।

सिद्धान्ततः भेद केवल व्यवहारिक दृष्टि से ही सम्भव है। परमार्थतः इसका कोई अस्तित्व नहीं है। यदि भेद को सत्य मान लिये जावें तब कारण ब्रह्म उत्पत्तिशील सिद्ध होने से नित्य नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः न सद् वस्तु का जन्म होता है न असत् वस्तु का। अतः यह समस्त जगत् मनोदृश्य मात्र है। उन्मनी भाव के उत्पन्न होने पर द्वैतात्मकता का विलय हो जाता है।

आचार्य ने कारिकाओं के अलातशान्ति नामक प्रकरण में कहा जैसे अलात (मसाल) के घुमाने से अनेक प्रकार की आकृतियां दिखलाई देती हैं तथा मशाल का चक्कर बन्द हो जाने पर वे सब आकृतियां विलीन हो जाती ह। उसी प्रकार

प्रकाश-भाष्य

सोऽयमात्माध्यक्षरमोंकारमधिकृत्य कथ्यमानोऽध्यक्षरम्। ओङ्कारो मात्रामधिकृत्य वर्तमान इत्यधिमात्रम्। आत्मनो ये पादास्ते ओङ्कारमात्रा अनुवर्तन्ते। ता मात्रा आकार उकार मकार इति।।८।।

भाष्यानुवाद

ओङ्कार अक्षर को अधिकृत (आश्रय) कर इस आत्मा का निर्वचन किया गया है अतः इसको अध्यक्षर कहा है। ओङ्कार मात्राओं को अधिकृत कर वर्तमान (स्थित) है अतः इसको अधिमात्र

मन के स्पन्दन से गतिशील प्रतीत होने वाला यह दृश्यप्रपञ्च मन की उन्मनी अवस्था उत्पन्न होते ही विलय हो जाता है। परमार्थ दृष्टि से इसकी उत्पत्ति एवं लय दोनों ही भ्रान्ति मूलक हैं। इस भ्रान्ति का आधार परब्रह्म ही है। रज्जु में सर्प अथवा शुक्ति में रजत की भ्रान्ति के समान ही परब्रह्म में ही प्रपञ्च की भ्रान्ति होती है।

प्रकाश भाष्यकार के मत से अजातवाद आगमाद्वैत का विरोधी नहीं अपितु समर्थक है। –गुरुजी महाराज ने इस मत के समर्थन में अनेक बार निम्न श्लोकों का उपदेश किया :–

नेत्त्थं विभोर्विवर्तोस्ति परिणामश्च न क्वचित्।
अथवा द्वयमप्यस्तु तथाप्यस्य न खण्डना।।
विवर्तेऽप्यतथारूपस्तथा भासि त्वमच्युत।
परिणामे स एवं त्वं सुवर्णमिव कुण्डले।।

कहते हैं। आत्मा के जो पाद कहे गये हैं वे ओंङ्कार की मात्राओं का अनुवर्तन करते हैं। वे मात्राऐं अकार, उकार तथा मकार हैं। आत्मा के पाद की मात्राऐं हैं एवं मात्रा ही पाद हैं।।८।।

।।६।।

विशेषेण कथयति–जागरितेति। अब विशेषतया जाग्रत् का कथन करते हैं।

मन्त्र

।।६।। जागरित स्थानो वैश्वानरोऽकारः प्रथमा मात्राप्तेरादिमत्त्वाद्वाप्नोति ह वै सर्वान् कामान् आदिश्च भवति य एवं वेद।।६।।

मन्त्रार्थ

वैश्वानर, जिसका जागरित स्थान है, आत्मा का प्रथम पाद है। यह व्याप्तित्व एवं आदिमत्व के कारण ओंकार की प्रथम मात्रा अकार है। जो साधक इस प्रकार जानता है वह सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त करता है, तथा साधकों में श्रेष्ठ हो जाता है।

प्रकाश-भाष्य

जागरित स्थानो वैश्वानरः समष्टिव्यष्टिरूपोऽकाराख्यामोङ्कारस्य प्रथमां मात्रामनुगतश्चिन्तनीयः। आप्तेर्व्याप्तेरकारस्य "अकारो वै सर्वा वाक्" इति श्रुतेः, आदिमत्त्वाद्वा सर्वेषां वर्णानां प्रथमत्वाद्वा एवं चिन्तकः साधकः सर्वान् कामान् मनोवाञ्छितान् काम्यमानान् पदार्थान् ह वै निश्चयेन आप्नोति। तथा सर्वेषां साधकानां मध्ये आदिः प्रथमो

भवति, य एवं वेद जानाति इत्यर्थः, "प्रयत्नः साधकः" इति प्रमाणात्।।६।।

प्रकाश-भाष्य-भाष्यानुवाद

जाग्रत् अवस्था में अनुभूत समष्टि एवं व्यष्टि रूप आत्मा के वैश्वानर नामक प्रथम पाद का चिन्तन ओंकार की प्रथम मात्रा अकार के अनुगत करना चाहिये। अर्थात् आत्मा का जागरित स्थानीय वैश्वानर नामक प्रथम पाद ओङ्कार की प्रथम मात्रा अकार है।

अकार समस्त वाक् तत्त्व में व्याप्त है।

श्रुति कहती है "अकारो वै सर्वा वाक्"।

अतः अकार के व्याप्तृत्व के समान आत्मा का प्रथमपाद अकार के अनुगत होने से सर्वव्यापी है। अथवा इस प्रकार भी कहा

टिप्पणी :- "प्रयत्नः साधकः" शिव सूत्रों के शाक्तोपाय नामक द्वितीय उन्मेष का द्वितीय सूत्र है। मन्त्रसाधन में जो अकृत्रिम अन्तःप्रयत्न होता है, अर्थात् जो प्रथम अन्तः उन्मेष होता है, जिसके कारण चिन्तक का पर–प्रतिभा में लय हो जाता है उसके चिर काल का निरोध का नाम प्रयत्न है। यह प्रयत्न के साधक नाम से कहा है जिसमें मन्त्री, मन्त्र एवं देवता का तादात्म्य हो जाता है।

(शिवसूत्र विमर्शनी एवं श्री स्वामीजी कृत ऋजूर्थ बोधिनी टीका देखिये)

जा सकता है कि अकार समस्त वर्णों में प्रथम है इस कारण आत्मा का प्रथम पाद प्रथम मात्रा अकार है। इस प्रकार चिन्तन करने से साधक निश्चय ही समस्त मनोवाञ्छित पदार्थों को प्राप्त करता है, तथा जो इस प्रकार जानता है वह समस्त साधकों में आदि अर्थात् प्रथम हो जाता है। "प्रयत्न साधकः" सूत्र इस मत के समर्थन में प्रमाण है।

सम्बन्ध निरुपण

।।१०।। विश्वेन सार्धमकारस्यैक्य चिन्तनफलं प्रदर्श्य तैजसेन सार्धमुकार मात्रायाः ध्यानरीतिफलं चाह। स्वप्नस्थानेति-।।१०।।

भाष्यानुवाद

वैश्वानर के साथ अकार के तादात्म्य के चिन्तन का फल प्रदर्शित कर आगे उकार मात्रा का तैजस के साथ ध्यान करने का फल कहते हैंः—

मन्त्र

स्वप्नस्थानस्तैजस उकारो द्वितीय मात्रा उत्कर्षादुभयत्वाद्वा, उत्कर्षति ह वै ज्ञानसंततिं समानश्च भवति, नास्याब्रह्मवित्कुले भवति य एवं वेद।

प्रकाश-भाष्य

स्वप्नस्थानस्तैजस ओंकारस्य उकाराख्यमात्रया चिन्त्यते। उत्कर्षाद् अकाराद् उत्कृष्टा हि उकाराख्यामात्रा,

उभयत्वाद्वा—अकारमकारयोर्मध्यस्थत्वाद्—विश्वप्राज्ञयोर्मध्ये तैजसः सूक्ष्मत्वात्। विश्वादुत्कृष्टस्तैजसो। य एवं वेद स ह वै निश्चयेन ज्ञानसंततिं विज्ञान परम्परामुत्कर्षति वर्धयति, समानश्च मित्रारिपक्षयोः भवति। अस्य कुले वंशे अब्रह्मवित् ब्रह्मज्ञानरहितो अन्योऽपि कश्चिन्न भवतीत्यर्थः।।१०।।

मन्त्र भाष्य (१०)

ओं की द्वितीया मात्रा उकार है, स्वप्नावस्था इसका स्थान है। आत्मा के तैजस नामक द्वितीय पाद का बोधक उकार नामक द्वितीय मात्रा है। उंकार अकार से उत्कृष्ट है अतएव इस को द्वितीया मात्रा कहा है। अथवा प्रथम एवं तृतीय मात्रा अकार एवं मकार के मध्य में स्थित होने से उभयात्मक है। उकार मात्रा तैजस् का रूप है विश्व एवं प्राज्ञ के मध्य में स्थित तैजस् का स्वरूप सूक्ष्म है। तैजस विश्व से उत्कृष्ट है जो ऐसा जानता है उसके ज्ञान प्रवाह का इससे उत्कर्ष होता है। तथा साधक में समत्व बुद्धि उत्पन्न होती है। जो साधक इस प्रकार जानता है उसके कुल में कोई भी ब्रह्म—ज्ञान से विहीन नहीं होता है।

प्रकाश-भाष्य (भाषा)

आत्मा के स्वप्नस्थानीय तैजस नामक द्वितीय पाद का चिन्तन ओंकार की उकार नामक द्वितीय मात्रा के द्वारा किया जाता है। उकार उत्कर्ष का द्योतक है अर्थात् अकार से उकार नामक मात्रा उत्कृष्ट हैं। अथवा प्रथम मात्रा अकार एवं तृतीय

मात्रा मकार के मध्य में स्थित होने से उकार उभयात्मक है। इस कारण भी इसको उत्कृष्ट कहा है। आत्मा के विश्व एवं प्राज्ञ पादों के मध्य में स्थित तैजस सूक्ष्म होने के कारण भी उत्कृष्ट है। जो यह जानता है कि तैजस पाद विश्वपाद से उत्कृष्ट है वह निश्चय ही ज्ञान–प्रवाह का उत्कर्ष करता है एवं विज्ञान परम्परा का संवर्धन करता है तथा शत्रु एवं मित्र में समत्व की अनुभूति करता है। इसके कुल में कोई भी ब्रह्म–ज्ञान से विहीन उत्पन्न नहीं होता है।।।१०।।

मन्त्र

।।११।। मकार मात्रया प्राज्ञस्यैक्य चिन्तनप्रकारमाह। सुषुप्तस्थानेति।।११।।

मन्त्र

सुषुप्तस्थानः प्राज्ञो मकारः तृतीया मात्रामितेरपीतेर्वा मिनोति ह वै इदं सर्वमप्रीतिश्च भवति य एवं वेद।।११।।

प्रकाश-भाष्य

सुषुप्त स्थानः प्राज्ञः समष्टिव्यष्टिरूपः मकारो मकाराख्यो वेदितव्यः तृतीया मात्रा ओंकारस्येयं चिन्तयितव्या, तया सममेकीकृत्य मितेर्मितिमानं परिमाणमित्यर्थः। मीयते अनया मात्रया विश्वस्तैजसश्च तयोराविर्भावतिरोभावौ हि प्राज्ञादेवेति मानकार्य निर्देशः। अपीतेर्वा अपीतिर्लयः एकीभाव इति, यावत् विश्वतैजसौ हि लयं गच्छतः सुषुप्तौ। य एवं वेद जानाति स ह वै निश्चयेन इदं सर्व जगन्

मिनौति जानाति तथा अप्रीतिश्च भवति। सर्वस्य आत्मा कारणरूपो निखिल जन प्रियो वा भवतीत्यर्थः। अत्र श्लोको भवति–

"अकारो नयते विश्वमुकारश्चापि तैजसम्।

मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रे विद्यतेगतिः।।११।।

प्रकाश-भाष्य-भाषा

अब ओंकार की तृतीया मात्रा मकार के साथ आत्मा के तृतीय पाद प्राज्ञ के ऐक्य की साधना पर विचार करते हैं।

मन्त्रार्थ

ओंकार की तृतीया मात्रा मकार आत्मा के प्राज्ञ नामक सुषुप्त–स्थानीय तृतीय पाद की वाचक है। इस मात्रा से प्राज्ञ के मिति एवं अपीति दो कार्यो का निर्देश होता है। मकार सब का मापक है एवं लय स्थान भी है। जो इस प्रकार जानता है उस साधक को लय की सिद्धि हो जाती है।

प्रकाश-भाष्य

ओंकार की समष्टि एवं व्यष्टि रूप मकार नामक मात्रा सुषुप्ति अवस्था में अनुभूत आत्मा का प्राज्ञ नामक तृतीय पाद है। मकार एवं प्राज्ञ के ऐक्यरुप चिन्तन से विश्व एवं तैजस नामक पादों के परिमाण का माप होता है अर्थात् विश्व एवं तैजस के आविर्भाव एवं तिरोभाव के मान कार्य का निर्देश प्राज्ञ से होता है। अपीति का अर्थ है लय अतएव सुषुप्ति में लय होते हुए विश्व एवं तैजस का प्राज्ञ से एक भाव हो जाता है। जो इस प्रकार जानता

है वह ज्ञानी है। वह निश्चय ही इदं पद वाच्य समस्त जगत का परिमाण जानता है तथा अपीति अर्थात् जगत से एकाकार हो जाता है। एवं कारण रूप सब का आत्मा वह साधक जनप्रिय हो जाता है।

उपर्युक्त आशय को प्रकट करने के लिए निम्नलिखित श्लोक प्रमाण है :–

"अकारो नयते विश्वमुकारश्चापि तैजसम्।

मकारश्च पुनः प्राज्ञं नामात्रे विद्यते गतिः।।"

अर्थात् अकार की उपासना से विश्व की, उकार से तैजस की एवंमकार से प्राज्ञं की सिद्धि होती है किन्तु शिव की अमात्र रूप से दर्शाने में शब्द की गति नहीं है।।११।।

एवं पादत्रयस्य मात्रात्रयेण चिन्तनं विधाय चतुर्थपादममात्ररूपं लक्ष्यात्मकमोंकारस्यामात्रया प्रदर्शयत्यमात्रेति :–

भाष्यानुवाद

इस प्रकार मात्रात्रय के साधन से आत्मा के पादत्रय के चिन्तन का प्रतिपादन कर आत्मा के अमात्र चतुर्थ पाद को प्रदर्शित करते हैं।

मन्त्र

।।१२।। अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव संविशत्यात्मनात्मानं य एवं वेद, य एवं वेद ।।१२।।

प्रकाश-भाष्य

चतुर्थः पादत्रयापेक्षः न तु वस्तुतः। यतो हि कार्यकारणविलक्षणः स संख्यारहितः, अव्यवहार्यः केनापि हेतुना व्यवहर्तुमयोग्यः, प्रपञ्चोपशमः प्रपञ्चस्य क्रियात्मकव्यवहारस्य जगत उपशमो लयः तिरोभावो निवृतिर्वा यत्रासौ, शिवो ब्रह्मतत्त्वं सामरस्याभिधेयोऽद्वैतं एवोंकार आत्मैव ब्रह्मस्वरूप एवं, वाच्यवाचकयोरभेदात्। य एवं ओंकार तत्त्व वेद जानाति। स आत्मनास्वरूपेणात्मानं विशति ब्रह्म रूपो भवति जीवब्रह्मणोरैक्यमनुभवति इत्यर्थः। साधनप्रयोजनं सम्यक् तस्यैव भवति इत्यभिप्रायः। एवं ब्रह्म–विद्यायास्तत्त्वं संक्षिप्ताक्षरैः सम्पूर्ण मुपदिश्य श्रुतिरभ्यासेनादरातिशयेन वा समाप्ति च सूचयति य एवं वेद एवं वेदेति।।१२।।

मन्त्रार्थ ।१२।।

आत्मा का अमात्र चतुर्थ पाद जो अव्यवहार्य है, जहां प्रपञ्च का उपशम हो जाता है वही शिव नामक अद्वैत तत्त्व ओंकार है। जो इस प्रकार ओंकार तत्त्व को जानता है वह आत्म–स्वरूप होकर स्वयं आत्मा में प्रविष्ट हो जाता है। जो इस प्रकार जानता है।

प्रकाश-भाष्य-भाषा

आत्मा के इस अमात्र पाद को अन्य तीन पदों की अपेक्षा करके ही चतुर्थ कहा गया हे, वास्तव में चतुर्थ नहीं है क्योंकि जो

कार्य कारण भाव से विलक्षण है वह संख्या से भी रहित है अर्थात् संख्या से विभाजित नहीं किया जा सकता। किसी भी हेतु से यह अमात्र पाद व्यवहार के योग्य नहीं है अतएव इसको अव्यवहार्य कहा गया है।

यहां प्रपञ्च अर्थात् जगत् के क्रियात्मक व्यवहार का उपशम हो जाता है अतः इसको प्रपञ्चोपशम निरूपित किया गया है। उपशम का का अर्थ है लय, तिरोभाव अथवा निवृत्ति। (आगम शास्त्र में) सामरस्य नाम से प्रसिद्ध शिवात्मक अद्वैत ब्रह्म–तत्त्व ही ओंकार है। वाच्य अर्थ एवं वाचक शब्द में शास्त्र अभेद का प्रतिपादन करता है अतएव ओंकार नाम से प्रतिपादित आत्मा ही ब्रह्म का स्वरूप है। जो ओंकार तत्त्व को जानता है वही ज्ञानी है। वह आत्म स्वरूप से आत्मा में प्रविष्ट हो जाता है। वह ब्रह्म रूप हो जाता है अर्थात् जीव एवं ब्रह्म के ऐक्य का अनुभव करता है। उसी का साधन एवं प्रयोजन पूर्ण होता है।

इस प्रकार ब्रह्म–विद्या तत्त्व का संक्षित अक्षरों से सम्पूर्ण उपदेश करके श्रुति के अभ्यास के हेतु अत्यन्त आदर सूचक शब्दों में 'य एवं वेद, य वेद' उपनिषत् के अन्त में कहा गया है तथा यह पुनरुक्ति समाप्ति की सूचक भी है।

टिप्पणी :- यहां शास्त्रकार ने अमात्र अव्यवहार्य तत्त्व का अत्यन्त श्रेयस्कर होने से शिव शब्द से निर्देश किया है। वस्तुतः यह निर्नामक है निरूप है। नाम एवं रूप दोनों ही प्रपञ्चात्मक हैं। अभेदार्थकारिकाओं में सिद्धनाथ ने लिखा है :–

वस्तुनो भावशून्यस्य त्वग्राह्यस्य निराकृतेः।
कल्पना मात्रमेवैतत् यच्छिव व्यवदेशनम्।।

भावशून्य निराकृति एवं अग्राह्यवस्तु का शिव नाम से व्यपदेश करना कल्पना मात्र है।

इति अथर्ववेदान्तार्न्तगत माण्डूक्योपनिषदः, प्रकाश भाष्य सम्पूर्णम्।।

———

अत्रैते श्लोकाश्च संगच्छन्ते

माण्डूक्योपनिषद् के प्रकाश भाष्य के सार के रूप में भाष्यकार ने निम्न श्लोकों की रचना की है।

विश्वं पादं सुचिन्त्यं विमलमतिवरैः स्थूलकार्ये निमग्नम्,
ओंकारस्यादिमात्रामनुगतमखिलामाद्यरूपं विभक्तम्।
ध्यात्वा प्राथम्यमाप्तिं निखिलमिह सुखं प्राप्यमोदं गतास्ते,
भावैस्तत्वज्ञश्रेष्ठैः सकल शुभगुणैराद्यभावं लभन्ते।।१।।

अनुवाद

ओंकार की प्रथम मात्रा आकार में अनुगत आत्मा का विश्व नामक प्रथम पाद स्थूल कार्य में निमग्न है तथा यह आकार निखिल विश्व का रूप है। प्रथम मात्रा अकार का ध्यान करने से साधक समस्त सुखों से युक्त प्रसन्नता को प्राप्त होता है तथा सब तत्त्वज्ञों में श्रेष्ठ व सकल शुभ गुणों से युक्त होकर साधकों में अग्रिणी हो जाता है।।१।।

सूक्ष्मं स्वप्नेस्वरूपं द्वितयमनुगतं पादश्रेष्ठं मुनीन्द्रा,
जाग्रद्भावात्प्रकृष्टं मननरतियुतास्तैजसं यान्ति रूपम्।
तेषां वंशे कदाचिन्नहिभवति जनो ब्रह्मतत्त्वाद्विरक्तः,
साम्यं सर्वत्र लब्ध्वा परमपदगता भान्तिवन्द्याः सुरेन्द्रैः।।२।।

अनुवाद

ओंकार की द्वितीया मात्रा उकार के अनुगत आत्मा का द्वितीय तैजस नाम पाद है। यह स्वप्नरूप सूक्ष्म पाद है तथा

जाग्रत् भाव से प्रकृष्ट है। इसको मनन करने से साधक तैजस रूप को प्राप्त होता है। इसके वंश में कोई ब्रह्म–ज्ञान से विरक्त नहीं होता है तथा सर्वत्र साम्य भाव को प्राप्त कर परमपद को प्राप्त होता है।।२।।

सौषुप्तं स्थानमुक्तं मितिरिति च त्रयं प्राज्ञसंज्ञोऽत्र देवः,
स्वानन्दं सर्व संस्थो विलयमुपगतो भुञ्जयन् कारणात्मा।
मात्रां तार्तीयरूपां वितत सुविमलां मान्तरूपां प्रसिद्धां,
एतां संचिन्त्य नित्यं मुनिवरमुकुटो नैव गच्छेद् भवाब्धिम्।।३।।

अनुवाद

आत्मा के तृतीय पाद प्राज्ञ का सुषुप्ति स्थान है। यह आनन्द रूप सर्वव्यापी कारण आत्मा है। यह ओंकार की तृतीया मात्रा मकार रूप है। इस मात्रा के चिन्तन से योगी संसार सागर से पार हो जाता है।।३।।

शैवं तत्त्वं चतुर्थं निखिल भुवनगं स्वात्मना भेद शून्यं,
द्वैताद् दृष्टादिरूपाद् व्यवहृतिरहितान्मात्रयाऽचिन्त्यरूपम्।
शान्तं प्राज्ञादि भावैरवहितमनसा लक्ष्य रुपेण बोद्धुम्,
शक्यं शम्भोः पदाख्यं स्तुतममरगणैः प्राप्य तं नौमि नित्यम्।।४।।

शैव तत्त्व चतुर्थ है जो समस्त भुवनों में व्यापत तथा स्वगत

टिप्पणी - नमस्कार :– विषयेभ्यः परावर्तनेन वृत्तीनां ब्रह्मैक प्रवणता नमस्कारः – विषयों से परावृत्त होकर वृत्तियों का ब्रह्म में एकाकार हो जाने का नाम नमस्कार है।

भेद से रहित है। शैव तत्त्व द्वैतात्मक दृश्य रूपों से एवं व्यावहारिक दृष्टि से रहित होने के कारण अचिन्त्य है। शान्त, प्राज्ञ आदि भावों से रहित केवल मन के द्वारा लक्ष्य रूप में जाना जा सकता है। देवताओं द्वारा स्तुत शम्भु के इस पद को इस नमस्कार ' करते हैं।।४।।

आद्यं तत्त्वं शिवाख्यं श्रुतिमुनिवचसां नैव दृष्टं पराख्यं,
शक्तिस्तस्यात्म-भूता चितिरिति विमला स्वस्वरूपा-प्रतिष्ठा।
तत्त्वं तद् योग सिद्धं सदिति शुभमतिश्चेश्वरं मन्यते हि,
विद्यां शुद्धां प्रसिद्धामनुभववितितं पञ्चकं शुद्धतत्त्वम्।।५।।

परमशिव नामक आद्य तत्त्व श्रुति एवं मुनियों की वाणी से भी अगम्य है, चिति नामक विमल शक्ति परशिव की आत्मभूत है तथा आत्मा के स्वरूप की प्रतिष्ठा है। जिस तत्त्व को सिद्ध जन ईश्वर मानते है वह सत् तत्व योग द्वारा सिद्ध है। पञ्चम तत्त्व शुद्ध विद्या है जो अनुभव द्वारा गम्य है।।५।।

अनुवाद

माया, कला, विद्या, राग, नियति, काल, जीव, यह सात शुद्धा शुद्ध तत्त्व हैं। तथा सांख्य शास्त्र में निरूपित शेष बीस जड़ तत्त्व तुर्य सहित माण्डूक्य–उपनिषद् में प्रतिपादित हैं ऐसा विद्धानों का मत है।


श्री पीताम्बरा पीठ
ह्लीं
दतिया (म.प्र.)